2 भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ (Basic Features of Indian Society)

- अति प्राचीन एवं विशाल भारतीय समाज अनेक धर्मों और जातियों से मिलकर बना हुआ है। लोगों की प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, रहन-सहन के तरीकों, भोजन एवं वस्त्र आदि में यहाँ काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ के ग्रामीण और नगरीय जीवन में भी स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ता है। यहाँ एक ओर शिकारी एवं घुमंतू जीवन व्यतीत करने वाली आदिम जनजातियाँ पाई जाती हैं, तो दूसरी ओर नगरीय समुदायों में ऐसे लोग हैं जो नवीनतम यंत्रों के माध्यम से अपनी आजीविका कमाते हैं। भारतीय समाज में हजारों वर्षों से प्रजातीय और सांस्कृतिक सम्मिश्रण भी होता रहा है जिसके कारण भारतीय समाज में विभिन्न प्रजातीय तत्त्व मिश्रित रूप में पाए जाते हैं जो मिलकर एक बहुलवादी समाज की रचना करते हैं।
- विभिन्न संस्कृतियों (द्रविड़, आर्य, मुस्लिम, पश्चिमी आदि) व उनके सम्मिश्रण का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु इस विविधता के बावजूद भारतीय समाज में एक मौलिक एकता भी दिखाई पड़ती है जिसका अनुभव न केवल भारतीय बल्कि विदेशी भी करते हैं।

परंपरागत भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ

विभिन्न कालों में भारतीय समाज की विवेचना के उपरांत परंपरागत भारतीय समाज की निम्न विशेषताओं की चर्चा की जा सकती है–

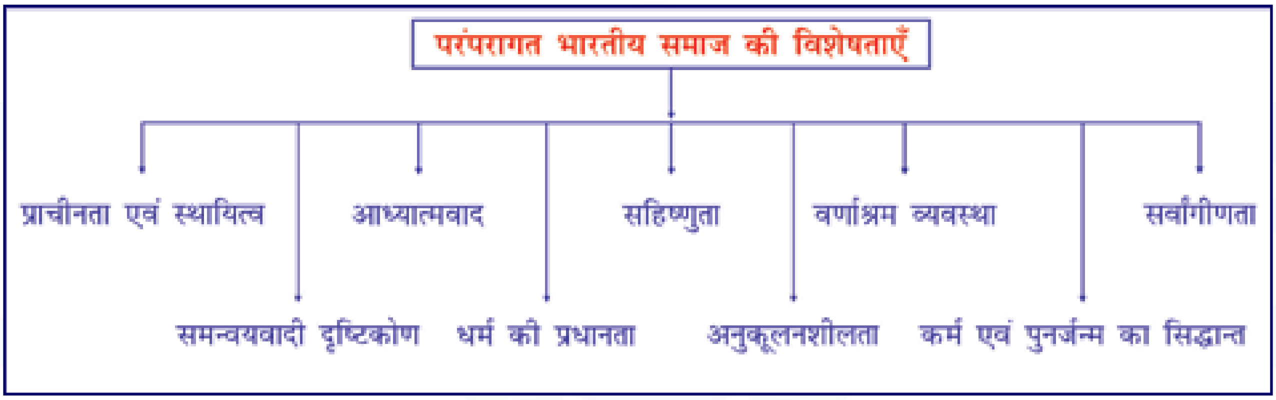

1. ***प्राचीनता एवं स्थायित्व***– भारत की संस्कृति एवं समाज व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों एवं सामाजिक व्यवस्थाओं में से एक है। समय के साथ-साथ मिस्र, सीरिया, यूनान, रोम आदि की प्राचीन संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं और उनके अवशेष मात्र ही बचे हैं, किन्तु हजारों वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आदि संस्कृति एवं समाज व्यवस्था आज भी जीवित है। आज भी हम भारत में वैदिक धर्म को मानते हैं। पवित्र वैदिक मंत्रों का यज्ञ एवं हवन के समय ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किया जाता है। विवाह वैदिक रीति से होता है। ग्राम-पंचायत, जातिप्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली आज भी विद्यमान है। गीता, बुद्ध और महावीर के उपदेश आज भी इस देश में जीवित और जाग्रत हैं। आध्यात्मवाद, प्रकृति-पूजा, पतिव्रता धर्म, कर्म और पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा और अस्तेय के सिद्धांत की गूँज आज भी इस देश के लोगों को प्रेरित करती है। सदियाँ बीत गई, अनेक परिवर्तन हुए, विदेशी आक्रमण हुए, किंतु भारतीय समाज एवं संस्कृति का दीपक आज भी प्रज्ज्वलित है, उसका अतीत वर्तमान में भी जीवित है।
2. ***समन्वयवादी दृष्टिकोण***– जनजातीय, हिन्दू, शक, हूण, कुषाण, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी संस्कृतियों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति नष्ट नहीं हुई वरन् इससे समन्वय एवं एकता भी स्थापित हुई है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में समन्वय की महान शक्ति है, जो निरंतर गतिमान रही है और आज तक विद्यमान है।
3. ***अध्यात्मवाद***– धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय समाज एवं संस्कृति की आत्मा है। भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख और भोग-लिप्सा को कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया। यहाँ आत्मा और ईश्वर के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक एवं आध्यात्मिक आनन्द को सर्वोपरि माना गया है। इसमें भोग और त्याग का सुन्दर समन्वय पाया जाता है।
4. ***धर्म की प्रधानता***– भारतीय समाज के जनजीवन पर वेदों, उपनिषदों, पुराण, महाभारत, रामायण, भगवद् गीता, कुरान एवं बाइबिल का अत्यधिक गहरा प्रभाव है। इन महान ग्रन्थों ने यहाँ के लोगों को आशावादिता, आस्तिकता, त्याग, तप, संयम आदि का पाठ पढ़ाया है। भारत के लोग सूर्योदय से

सूर्यास्त तक तथा जन्म से मृत्युपर्यन्त अनेक धार्मिक कार्यों की पूर्ति करते हैं।

5. ***सहिष्णुता–*** भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक महान् विशेषता इसकी सहिष्णुता है। भारत में सभी धर्मों, जातियों, प्रजातियों एवं संप्रदायों के प्रति उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेमभाव पाया जाता है। हमारे यहाँ समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का आगमन हुआ और सभी को फलने-फूलने का अवसर दिया गया। हमारे द्वारा असहिष्णु होकर कभी भी विदेशियों एवं अन्य संस्कृति के लोगों पर बर्बर अत्याचार नहीं किए गए।

6. ***अनुकूलनशीलता–*** भारतीय संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशील प्रवृत्ति का महान योगदान है। भारतीय संस्कृति अपने दीर्घ जीवन के लिए समय चक्र और परिस्थितियों के अनुसार सदैव समाज के साथ सामंजस्य करती रही है, जिसके परिणामस्वरूप यह आज तक बनी रही है। भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएँ समय के साथ अपने को परिवर्तित करते रहे हैं।

7. ***वर्णाश्रम व्यवस्था–*** प्राचीन भारतीय संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषता है-वर्ण एवं आश्रमों की व्यवस्था। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की रचना की गई। ब्राह्मण समाज, बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक हैं तो क्षत्रिय शक्ति के, वैश्य भरण-पोषण एवं अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं तो शूद्र समाज की सेवा करते हैं।

8. ***कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत–*** भारतीय संस्कृति में कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यह माना जाता है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा मिलता है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले को ऊँची योनि में जन्म और सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है जबकि बुरे कर्म करने वाले को निम्न योनि में जन्म लेना होता है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त द्वारा भारतीयों को सदैव अच्छे कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।

9. ***सर्वांगीणता–*** भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक विशेषता यह है कि इसका संबंध किसी एक जाति, वर्ण, धर्म, या किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होकर समाज के सभी पक्षों से है और इसके निर्माण में राजा, किसान, मजदूर, शिक्षित, शूद्र, ब्राह्मण आदि सभी का योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' अर्थात सभी सुखी हो।

परंपरागत भारतीय समाज के आधार

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्यों के लक्ष्यों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया जाए और नियमानुसार इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें उचित प्रेरणा प्रदान की जाए, साथ ही उनके बीच एकीकरण एवं सामंजस्य स्थापित करते हुए सामाजिक व्यवस्था के संतुलन एवं निरंतरता को बनाए रखा जाए।

- इस संदर्भ में भारतीय सामाजिक संगठन को भी कई आधारों पर संगठित किया गया है। इन आधारों में धर्म, पुरुषार्थ, कर्म का सिद्धांत, ऋण तथा यज्ञ सर्वाधिक प्रमुख हैं।

धर्म (Religion)

धर्म हिन्दू सामाजिक संगठन का केन्द्रीय आधार है, जिसको परिभाषित करते हुए कहा गया है कि धर्म चारों वर्णों एवं आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार पुरुषार्थों के संबंध में पालन करने योग्य मनुष्य का संपूर्ण कर्तव्य है। अर्थात् हिंदू धर्म को जीवन के कर्तव्य (कर्म) के रूप में देखा गया है तथा वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुल-धर्म, राज-धर्म, स्व-धर्म आदि के रूप में वर्गीकृत कर व्यक्ति के स्वयं के प्रति और संपूर्ण समाज के प्रति कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है और सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को धर्म के साथ सम्बद्ध कर व्यक्ति को समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्देशित किया गया है। इसे निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. भारतीय मान्यता के अनुसार इस विश्व और ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता केवल एक ईश्वर है। मनु के अनुसार इस प्रकार यह संपूर्ण जड़ तथा चेतन जगत् सर्वशक्तिमान परमात्मा की अभिव्यक्ति है और मानव जीवन के लिए धर्म तथा कर्म-क्षेत्र है। इसी संसार में अपने धर्मानुसार आचरण के द्वारा ही जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् 'परम सत्य' की ओर बढ़ा जा सकता है।
2. उत्सव, पर्व और त्यौहार सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं और इन पर भी हमें धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। नवरात्र, दशहरा, नागपंचमी, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी, तीज, करवाचौथ आदि हिन्दुओं के महत्त्वपूर्ण व्रत हैं और इनमें से प्रत्येक में किसी न किसी देवी-देवता को पूजने का विधान है।
3. भारतीय जीवन के सभी प्रमुख कर्तव्य धर्म आधारित हैं। हिन्दू जीवन दर्शन के अनुसार शास्त्र विहित कर्म ही धर्म हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग आदि सार्वभौम कर्त्तव्य हैं और इन सबका आधार धर्म ही है। जीवन के आधारभूत कर्तव्य-कर्मों में यज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण है।
4. व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शुद्धि या सुधार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों को ही संस्कार कहते हैं जिसके माध्यम से ही एक व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सकता है। जीवन पथ के ये सभी संस्कार किसी न किसी रूप में धर्म से संबंधित व धर्म पर आधारित होते हैं।
5. सफल जीवन के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त है और भारत में बच्चे के जीवन में यह विद्यारम्भ भी धार्मिक

आधार पर ही होता है। हिन्दुओं में इस संस्कार के अवसर पर विधिवत पट्टी पूजन किया जाता है। आज भी ग्रामीण समुदायों में कुछ लोग लिखना-पढ़ना इस उद्देश्य से सीखना चाहते हैं कि वे धार्मिक पुस्तकों को पढ़ सकें।

6. भारत में व्यक्ति का पारिवारिक जीवन भी धर्म पर आधारित है। पारिवारिक जीवन में प्रवेश पाने के लिए विवाह अनिवार्य है और हिन्दुओं में तो विवाह स्वयं ही एक धार्मिक संस्कार है। हिन्दुओं में पत्नी को धर्म-पत्नी व पति को पति-देवता कहा जाता है। पत्नी विहीन पुरुष धार्मिक कर्तव्यों को करने का अधिकारी नहीं होता।

7. भारत में आर्थिक जीवन का भी धार्मिक आधार है। हिन्दुओं में लक्ष्मी को धन की देवी माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि धनी या निर्धन होना पूर्णतया इसी देवी माँ की कृपा पर निर्भर करता है। निर्धनता को एक ईश्वरीय अभिशाप माना गया है और धर्म विरुद्ध तरीकों से धन कमाने को पाप माना जाता है।

8. प्राचीन भारत में राजनीतिक जीवन के कर्तव्यों का पालन भी धार्मिक आधार पर होता था। प्रत्येक राजा के दरबार में एक राजपुरोहित या राजगुरु होता था जिसकी आज्ञा का पालन राजा भी करता था। परंपरागत रूप में राजनीतिक जीवन के धार्मिक आधार का एक और प्रमाण 'राजधर्म' की अवधारणा में देखा जा सकता है जो राजा के कर्तव्यों को बताता है। आधुनिक प्रजातंत्रात्मक राज्य तक में जनता के प्रतिनिधि (संसद् तथा विधानसभा के सदस्य) ईश्वर के नाम पर ही अपने पद तथा गोपनीयता की शपथ लेते हैं।

9. भारत में जीवन का अंत हो जाने अर्थात् मृत्यु के बाद भी 'जीवन' (अगर हम उसे जीवन मानें) धर्म पर आधारित है। व्यक्ति के मर जाने पर जो अंतिम संस्कार किया जाता है वह भी धर्म पर ही आधारित होता है। हिन्दुओं में मर रहे व्यक्ति को भगवान का नाम लेने को कहा जाता है, उसकी देह की अस्थियों या जली हुई राख को गंगा अथवा अन्य किसी पवित्र नदी में बहा दिया जाता है, तेरहवीं के दिन हवन आदि किया जाता है।

धर्म : समकालीन संदर्भ

- वर्तमान भारतीय समाज में विज्ञान एवं तार्किक विश्व दृष्टि के विकास के कारण निश्चित तौर पर जीवन के अन्य क्षेत्रों (शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि) में धर्म के प्रभाव में कमी आई है। परन्तु, विश्वास और आस्था की एक व्यवस्था के रूप में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है। कावड़ियों, वैष्णो देवी के दर्शनार्थियों एवं कुंभ के मेले में स्नान करने के लिए आने वाले भक्तों की बढ़ती संख्या इस तथ्य को पुष्ट करती है। कर्त्तव्य-कर्म के रूप में भले ही आज धर्म का महत्त्व कम हुआ है परन्तु आज भी अचेतन रूप में नैतिकता के आधार पर भारतीय जनमानस पर इसका प्रभाव कायम है।

पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अर्थ मानव जीवन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है जिसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के रूप में चार पुरुषार्थों को शामिल किया जाता है:-

- 1. धर्म 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष इन सभी पुरुषार्थों में धर्म को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके बिना अन्य किसी भी पुरुषार्थ को समुचित रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। एक पुरुषार्थ के रूप में धर्म का तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों से है जो लोकहितकारी हैं तथा जिनके द्वारा व्यक्ति को इस जीवन तथा पारलौकिक जीवन में 'अभ्युदय' की प्राप्ति होती है। इस पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हिन्दू व्यवस्था में सभी व्यक्तियों के अनुकूल कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म एवं विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति के भिन्न-भिन्न कर्तव्यों के निर्धारण में भी पुरुषार्थ के रूप में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है।
- 'अर्थ' दूसरा महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है जिसके बिना वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति नहीं की जा सकती। अर्थ का तात्पर्य उन सभी पदार्थों तथा साधनों से है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने विभिन्न सांसारिक दायित्वों को पूरा करता है। पुरुषार्थ की यह विशेषता है कि इसने व्यक्ति के सामने धर्म और मोक्ष का आदर्श प्रस्तुत करने के बाद भी उसे अन्य व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों से पृथक हो जाने की अनुमति नहीं दी। इसी कारण 'अर्थ' को एक पुरुषार्थ का रूप देकर व्यक्ति को उद्यम करने का प्रोत्साहन दिया गया। परन्तु, धन के संचय और आर्थिक समृद्धि की प्रतिस्पर्द्धा से सामाजिक संघर्षों की रक्षा के लिए व्यक्ति को केवल गृहस्थ आश्रम में ही आर्थिक क्रियाएँ करने की अनुमति दी गई। हमारे समाज में 'अर्थ' की प्राप्ति स्वयं में एक लक्ष्य न होकर, लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन मात्र है। इसी आधार पर आर्थिक साधनों को उद्यम से प्राप्त करने का आदेश देकर भी इसे धर्म की धारणा से मिला दिया गया जिससे व्यक्ति ईमानदारी व न्यायोचित ढंग से आर्थिक साधनों को प्राप्त करे तथा सम्पत्ति का उपभोग और उत्पत्ति इस प्रकार हो कि सामान्य कल्याण में वृद्धि हो सके।
- पुरुषार्थों के अन्तर्गत 'काम' को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यद्यपि 'काम' को सांसारिक जीवन के आधार के रूप में स्वीकार किया गया लेकिन इसे सबसे निम्न कोटि का पुरुषार्थ माना गया। व्यापक अर्थों में काम का तात्पर्य उन सभी इच्छाओं से ही है जो इन्द्रियों की संतुष्टि से संबंधित हैं और जो मनुष्य को भौतिक सुख की ओर प्रेरित करती है।

- काम को एक पुरुषार्थ के रूप में तीन आधारों पर स्वीकार किया गया है। (1) जैविकीय आधार पर विभिन्न इच्छाओं के कारण व्यक्ति में उत्पन्न तनाव को जैविकीय क्रिया के द्वारा संतुष्ट करना। (2) सामाजिक आधार पर प्रजनन अथवा समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए काम की पूर्ति, (3) धार्मिक आधार पर काम को केवल उसी सीमा तक मान्यता दी गई है जहाँ तक यह व्यक्ति की अति आवश्यक इच्छाओं और इन्द्रियजन्य वासना को शांत करने में सहायक है।
- मोक्ष अंतिम और सर्वाधिक प्रमुख पुरुषार्थ है जिसे हिन्दू जीवन का अंतिम उद्देश्य माना जाता है। व्यक्ति जब सात्विक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उस पर पड़ा हुआ माया का आवरण हट जाता है और व्यक्ति स्वयं को माया से भिन्न अनुभव करने लगता है। इस स्थिति में प्रकृति अथवा माया व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पाती और इस प्रकार व्यक्ति 'कैवल्यता' (बंधनों से पूर्ण छुटकारा) की स्थिति को प्राप्त कर लेता है।
- उपरोक्त चारों पुरुषार्थों में मोक्ष को मानव जीवन के अंतिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका संबंध अलौकिक जगत की सत्ता से है अर्थात् जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होना, अर्थात् आत्मा का परमात्मा में विलीन होना ही मोक्ष माना गया है। मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं-ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। व्यक्ति जब सभी प्राणियों में समानता का भाव रखता हुआ अपने मन को स्थिर कर लेता है अथवा आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है तब इसे ही मोक्ष का 'ज्ञान मार्ग' कहा जाता है। इसी प्रकार 'भक्ति-मार्ग' वह है जिसमें ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करता हुआ मनुष्य उसके प्रति अपने को पूर्णतया समर्पित कर देता है। कर्म मार्ग के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्ति हेतु धर्म के अनुसार अर्थ एवं काम के लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है।
- हिंदू धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म-मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया गया है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति बिना अर्थ (धन अर्जन या भौतिक क्रियाकलाप) के संभव नहीं है। हिंदू धर्म में अर्थ के साथ-साथ काम को भी महत्त्व प्रदान करते हुए इसे पुरुषार्थ में शामिल किया गया है ताकि मानव समाज की निरंतरता बनी रहे, परन्तु गलत तरीके से धन अर्जन या काम संबंधी क्रियाओं से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। अर्थ और काम के लक्ष्यों की प्राप्ति धर्म द्वारा बताए गए मार्ग अथवा नियम के अनुसार ही की जानी चाहिए इसलिए हिन्दू समाज ने धर्म, अर्थ और काम के समन्वित रूप को त्रिवर्ग की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

पुरुषार्थ : समकालीन संदर्भ

- वर्तमान भारतीय समाज में भौतिक लक्ष्यों के महत्त्व के बढ़ जाने के कारण निश्चित तौर पर इसकी महत्ता कम हो गयी है फिर भी यह अचेतन रूप में आज भी विद्यमान है। आज भी प्रत्येक हिन्दू अपना परलोक सुधारने का प्रयास करता है।अंतिम संस्कार, अस्थियों का गंगा में विसर्जन, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा आज भी इसकी निरंतरता को दर्शाते हैं। हिंदू संस्कृति के सारतत्व के रूप में, एक विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में यह आज भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि नगरों की अपेक्षा गाँवों में इसका प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत हिंदू सामाजिक संगठन का प्रमुख आधार है जिसकी मान्यता है कि कर्म केवल भौतिक क्रिया नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत मानसिक, आध्यात्मिक एवं भावनात्मक सभी क्रियाएँ आती हैं (कायिक, वाचिक और मानसिक) और इस कर्म से उत्पन्न शक्ति द्वारा कर्म फल उत्पन्न होता है। कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है, किए गए कर्म का फल नष्ट नहीं होता है और बिना कर्म के फल नहीं मिलता है तथा कर्म का चक्र अनंत है और मनुष्यों को अपने किए गए कर्म का फल भुगतना ही पड़ता है।

इस संदर्भ में तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा की गई है:-

1. संचित कर्म (वह कर्म जो इस जीवन में किया जा रहा है)
2. प्रारब्ध कर्म (अतीत का कर्म जिसका फल हम भुगत रहे हैं।)
3. संचयीमान कर्म (वह एकत्रित कर्म जिसका फल हमें भविष्य में भुगतना है।)

- इस सिद्धांत की मान्यता है कि आत्मा अमर है तथा पुनर्जन्म होता है और इसका संबंध कर्म-फल से होता है। सद्कर्मों द्वारा व्यक्ति के भाग्य में सुधार संभव है। प्रमुख सद्कर्म-यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि माने गए हैं।

हिंदू दर्शन में जीवन व्यतीत करने के दो मार्ग बताए गए हैं:-

1. संन्यासी का मार्ग
2. गृहस्थ का मार्ग

- इनमें से गृहस्थ के मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है जिसको कर्मयोग के नाम से जाना जाता है।

कर्म और भाग्य

- अनेक विद्वानों का विचार है कि कर्म का सिद्धांत ही हिन्दू जीवन में भाग्य का आधार रहा है। महाभारत में धर्म-व्याध ने कहा है कि भाग्य मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है और मनुष्य को बिना किसी प्रतिवाद के भाग्य को स्वीकार करना चाहिए। **मैक्डॉनेल** का कथन है कि ''कर्म और पुनर्जन्म की संयुक्त धारणा के प्रभाव से एक ओर व्यक्ति को इस जन्म को अपने पूर्वजन्म के कर्मों

का फल मानकर भाग्य पर सन्तोष करने की प्रेरणा मिली है, जबकि दूसरी ओर इसने व्यक्ति की क्रियाशीलता को शिथिल करके उसे सांसारिक विरक्ति या उदासीनता की ओर उन्मुख किया है।'' इसके विपरीत, **राधाकृष्णन** का कथन है कि, कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति को भाग्य से बाँधता नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में अपने विकास की छूट देता है। कर्म भाग्य पर आधारित नहीं है बल्कि भाग्य कर्म पर आधारित है। इस रूप में भाग्य में स्वयं ही कोई बल नहीं होता बल्कि यह तो व्यक्ति के कर्मों से ही बल प्राप्त करता है और यदि व्यक्ति के कर्म बदल जाए तब भाग्य का प्रभाव अपने आप बदल जाता है।

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत : समकालीन संदर्भ

- तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत की वर्तमान में प्रासंगिकता कम हुई है फिर भी यह समाज में अचेतन रूप में कमोबेश आज भी विद्यमान है। आज धार्मिक क्रियाकलापों के कई पक्ष मजबूत हो रहे हैं जिसमें कहीं न कहीं यह अभिप्रेरक के रूप में जरूर विद्यमान है। विशिष्ट भारतीय संस्कृति और व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी यह सिद्धांत महत्त्वपूर्ण बना हुआ है और नगरों की तुलना में विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है।
- स्पष्ट है कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धांत व्यक्ति के स्वधर्म पालन करने, सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने एवं सामाजिक संगठन को स्थिरता प्रदान करने के लिए प्रमुख नैतिक आधार प्रदान करता है।

ऋण तथा यज्ञ का सिद्धांत

ऋण तथा यज्ञ की अवधारणा को व्यक्ति के धार्मिक कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसकी मान्यता है कि व्यक्ति कुछ ऋणों के साथ मानव शरीर धारण करता है। ये प्रमुख ऋण हैं–

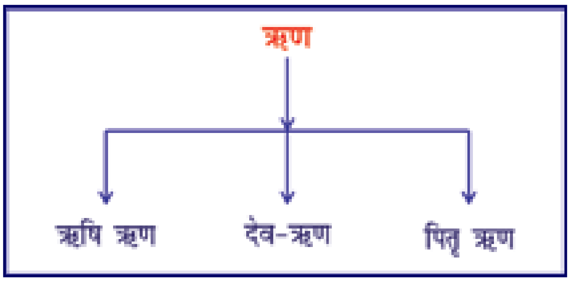

1. ***ऋषि ऋण–*** यह अपने परम पूज्य ऋषियों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।
2. ***देव-ऋण–*** यह ऋण इस जगत के निर्माता देवताओं के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्देशित करता है।
3. ***पितृ ऋण–*** यह ऋण जन्म देने वाले पितरों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।

- इसके अलावा अतिथियों एवं अन्य जीवों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य कर्म के निर्धारण हेतु **अतिथि ऋण** एवं **जीव ऋण** का उल्लेख भी किया गया है।
- धार्मिक कर्तव्य पालन या विभिन्न ऋणों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति का प्रयत्न ही यज्ञ कहलाता है जिसका निर्धारण विभिन्न यज्ञों के रूप में किया गया है। जैसे–

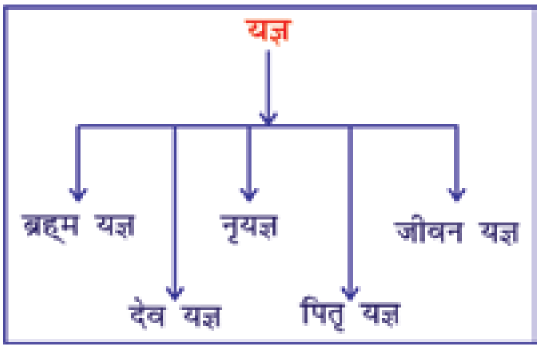

1. ***ब्रह्म यज्ञ–*** इस यज्ञ की पूर्ति व्यक्ति वेद अध्ययन व अध्यापन द्वारा करता है।
2. ***पितृ यज्ञ–*** श्राद्ध कर्म, पितरों का तर्पण और प्रजनन (पुत्र के रूप में) द्वारा पितृ यज्ञ पूरा करने का विधान धर्मशास्त्रों द्वारा बनाया गया है।
3. ***देव यज्ञ–*** देवताओं का आह्वान तथा असहाय एवं अपाहिजों को दान देकर सहारा प्रदान करना देव यज्ञ के अन्तर्गत आता है।
4. ***नृयज्ञ–*** अतिथियों की सेवा के रूप में मानवता की सेवा के लिए इस यज्ञ का प्रावधान किया गया।
5. ***जीवन यज्ञ–*** अन्य जीव जन्तुओं कीरक्षा और उनकी वृद्धि के प्रयासों को इस यज्ञ द्वारा सुनिश्चित किया गया है।

ऋण तथा यज्ञ : समकालीन संदर्भ

- आधुनिक भारतीय समाज में व्यावहारिक रूप से इनका महत्त्व कम हुआ है, परन्तु अचेतन रूप से आज भी यह सदस्यों के क्रियाओं के निदेशक के रूप में क्रियाशील हैं। गया में पितरों का तर्पण, श्राद्ध कर्म, अस्थियों का गंगा में प्रवहन, पुत्र-प्राप्ति की असीम चाह की विद्यमानता आदि के रूप में इनके प्रभाव को आज भी देखा जा सकता है। विशिष्ट संस्कृति और विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी इस सिद्धांत का महत्त्व बना हुआ है, परन्तु शहरों की अपेक्षा गाँवों में आज यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दू संस्कार

भारतीय हिन्दू समाज में धर्म पर आधारित वे पद्धतियाँ जिनके द्वारा व्यक्ति के जीवन को शुद्ध एवं पवित्र बनाने का प्रयास किया जाता है, जिससे वह जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने की योग्यता धारण कर सके, संस्कार कहलाता है।

- वस्तुत: ये वे पवित्र अनुष्ठान हैं जो कि सामजिक, आध्यात्मिक, शारीरिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाते हैं। इन अनुष्ठानों के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन करने की चेष्टा की जाती है। भारतीय समाज में संस्कार की क्रिया व्यक्ति के जन्म लेने से पूर्व ही आरंभ हो जाती है तथा मृत्यु तक चलती है। माना जाता है कि बिना संस्कारों को पूर्ण किए व्यक्ति पूर्णता को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। इन संस्कारों में यज्ञ की क्रिया, मंत्रोच्चारण, देवता एवं पितरों का आमंत्रण, शुभ घड़ी इत्यादि तत्त्व शामिल होते हैं।
- वेदों धर्मसूत्रों एवं गृहसूत्रों में संस्कारों की संख्या निर्धारित की गई है। ऋग्वेद में केवल तीन संस्कार गर्भधान, विवाह एवं मृत्यु का ही उल्लेख है परंतु बाद के ग्रंथों में इनकी संख्या अलग-अलग निर्धारित की गई है।

आश्रम व्यवस्था

हिंदू दर्शन में सामाजिक संगठन बनाए रखने एवं व्यक्ति के जीवन को संगठित एवं व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था के रूप में व्यक्ति के पूरे जीवनकाल को इस तरह नियोजित किया गया ताकि व्यक्ति एवं समाज के बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक प्रगति को अधिकतम किया जा सके। इस प्रकार हिंदू दर्शन के अनुसार आश्रम व्यवस्था सामाजिक नियोजन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के जीवन को इस तरह नियोजित किया जाता है कि वह अपने आयु के विभिन्न स्तरों में अलग-अलग सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए मोक्ष के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस व्यवस्था के अंतर्गत जीवन को 100 वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में बाँटा गया है और प्रत्येक आश्रम से संबंधित व्यक्ति के दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। ये निम्न हैं-

1. ***ब्रह्मचर्य आश्रम (1-25 वर्ष)***-इस आश्रम के अंतर्गत अध्ययन कार्य करते हुए, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर बल दिया जाता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि यह जीवन के आरंभिक वर्षो में गुरु के पास रहकर विद्या एवं धर्म का अध्ययन करते हुए आने वाले जीवन के लिए स्वयं को तैयार करे। इस आश्रम में ज्ञान के विकास एवं व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा दी जाती है।
2. ***गृहस्थ आश्रम (25 से 50 वर्ष)***-विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर विभिन्न यज्ञों का संपादन करना तथा गृहस्थ जीवन से संबंधित दायित्वों का निर्वाह करना। व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति के लिए यह विधान किया गया है कि वह समाज के उन उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके जो उसके लिए समाज ने निर्धारित किया है। इसमें प्रजनन द्वारा सामाजिक निरंतरता तथा यज्ञ व ऋण द्वारा प्रकृति और समाज के ऋणों को उतारने की व्यवस्था की गई है।
3. ***वानप्रस्थ आश्रम (50 से 75 वर्ष)***- इसमें व्यक्ति परिवार से अलग रहकर सांसारिक मोह-माया से पृथक होने का प्रयास करता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह अब समाज से दूर रहते हुए अपने जीवन के अर्थ को जानने का प्रयास करे और आने वाली पीढ़ी को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने हेतु स्वतंत्र करे, साथ ही अपने अनुभवों द्वारा उनका दिशा निर्देशन करे।
4. ***संन्यास आश्रम (75 से 100 वर्ष)***- संन्यास आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति से अपेक्षा की गई है कि वह भ्रमण करते हुए संसार के कल्याण में अपना जीवन लगाए। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति अपने परिवार से एकदम अलग हो जाता है और संपूर्ण संसार को अपना परिवार मानता है। वह भ्रमणकारी जीवन व्यतीत करता है और अपने जीवन के संपूर्ण अनुभवों द्वारा लोकोपकारी कार्यों को करता हुआ लोक कल्याण में रत हो जाता है।

- एक हिन्दू के जीवन के उपर्युक्त चारों चरणों को मिलाकर आश्रम व्यवस्था का निर्माण होता है। पहला आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा प्राप्ति का चरण है। परन्तु चौथे वर्ण अर्थात् शूद्र और पहले तीन वर्णो की महिलाओं को इस आश्रम में प्रवेश की अनुमति नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था जीवन के विभिन्न चरणों को आयु के विभिन्न चरणों से जोड़ने की एक आदर्श व्यवस्था है जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि वर्णाश्रम का हर आश्रम किस आयु से शुरू होता है। वर्णाश्रम का पालन करना अनिवार्य नहीं है लेकिन इसे सामान्यत: काफी मान्यता दी जाती है।

वर्ण व्यवस्था (Varna System)

सभी समाज एक संगठित व्यवस्था के रूप में ही कार्य कर सकते हैं। अत: सामाजिक संगठन या व्यवस्था को सुचारू रूप से क्रियाशील करने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक कार्यों का विभाजन उचित ढंग से किया जाए। वर्ण व्यवस्था सामाजिक कार्यो को विभिन्न स्वभाव, गुण एवम् प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों अथवा समूहों में बाँट देने की एक परंपरागत व्यवस्था है जिसके अंतर्गत सामाजिक कार्यों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है और इन चार वर्गों से संबंधित कार्य करने वाले समूहों को चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में विभक्त किया जाता है। कभी-कभी अछूत के रूप में एक पाँचवें वर्ण की भी चर्चा की जाती है।

- इन सभी वर्णों के लिए अलग-अलग कार्य सुनिश्चित किए गए हैं। ब्राह्मण धार्मिक और आनुष्ठानिक कार्य, वेदों का

अध्ययन और समाज के सभी वर्गों के लिए मानदंड (धर्म) बनाने के कर्तव्य को पूरा करते थे। क्षत्रिय वर्ण का कार्य देश की रक्षा करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना आदि निर्धारित किया गया था। व्यावसायिक कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्यों पर था जबकि शूद्र वर्ण का कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा से संबंधित था। समय बीतने के साथ इन तीनों वर्णों ने अपने कार्यों में दक्षता प्राप्त कर ली और एक सामाजिक सोपान में ढल गए जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का स्थान क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय रहा। चौथा स्थान शूद्रों या दासों का रहा जो ऊपर के तीन वर्णों के लोगों की सेवा करते थे। वर्ण जाति समूहों से भिन्न हैं क्योंकि वर्ण हिन्दू समाज के बृहद् भाग हैं, जबकि जातियाँ विशिष्ट अन्त:वैवाहिक समूह हैं जिनकी संख्या हजारों में है। वर्ण अखिल भारतीय स्तर पर सामान्य घटना हैं जबकि जातियाँ स्थानिक समूह हैं।

- अपने उद्‌भव के आरंभिक समय में वर्णों के व्यवसाय वंशानुगत नहीं थे। उनको न केवल व्यवसायों में परिवर्तन की छूट थी बल्कि यदि किसी व्यक्ति में आवश्यक बुद्धि और गुण थे तो वह अपनी प्रस्थिति को भी ऊपर उठा सकता था। उच्च से निम्न जाति में पदावनति भी होती थी। समय बीतने के साथ जाति और व्यवसाय स्थिर और वंशानुगत बनते गए। सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं का यह विभाजन सामाजिक विधान का एक मानक और भाग बन गया। इस प्रकार जाति और सम्पत्ति रूपी संस्थाओं ने राज्य के उद्‌भव को आवश्यक बना दिया और वर्ण व्यवस्था को समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक लाभकारी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया।
- वर्ण व्यवस्था में कठोरता उत्तर वैदिक काल में आई जब ऋषियों ने सामाजिक संबंधों और विवाह पर प्रतिबंध लगाने के महत्त्व पर बल दिया। रामायण, महाभारत और जातक कथाओं में लिखा है कि ब्राह्मण न केवल वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ थे बल्कि उनके पास सम्पत्ति और सत्ता भी थी। राजा को अपने विशेषाधिकार से ब्राह्मणों को गाँवों में राजस्व वसूल करने की छूट या कर-मुक्त जमीनें (ब्रह्मदेय) देने का अधिकार था।
- क्षत्रियों और वैश्यों पर वर्ण का वंशानुगत आधार लागू नहीं होता था। शासन, कला और सैन्य व्यवसाय एक समूह तक सीमित नहीं थे। भारतीय इतिहास में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के राजवंशों के कई उदाहरण भी मिलते हैं। सातवाहन ब्राह्मण थे, गुप्त वैश्य थे और नंद राजा शूद्र थे। इसके अलावा यवन, शक और कुषाण राजवंश किसी जाति से संबंधित नहीं थे।
- वैश्य एक बहुत अधिक विभेदित जाति समूह था क्योंकि उसमें कुछ परिवार धनी थे और अन्य छोटे किसान, कारीगर, फेरीवाले आदि थे। शूद्र लोगों का प्रत्यक्ष रूप में एक वर्ण स्वरूप था। वे तीनों वर्णों की सेवा करते थे और उनकी आर्थिक स्थिति निम्नतम थी। वास्तव में वे उच्च जातियों के नौकर के रूप में समझे जाते थे।

जाति-व्यवस्था (Caste System)

जाति व्यवस्था भारत में सामाजिक स्तरीकरण का विशिष्ट स्वरूप रही है जो भारतीय सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार के रूप में देखी जा सकती है। भारतीय समाज ऐसे जातीय और उप-जातीय समूहों में बँटा है जिनकी सदस्यता का आधार जन्म होता है न कि व्यक्ति के गुण एवं स्वभाव। भारतीय समाज के वर्ण व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के कारण स्तरीकरण के आधार के रूप में गुण तथा स्वभाव का स्थान जन्म ने ले लिया, परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में बदल गई। प्रत्येक वर्ण में जातियाँ बढ़ती गई और जाति की सदस्यता पूर्णत: जन्म पर आधारित हो गई। सामाजिक गतिशीलता की दृष्टि से वर्ण परिवर्तन तो फिर भी संभव था परन्तु एक जाति की सदस्यता छोड़कर किसी अन्य जाति में पहुँचना प्राय: असंभव था। धीरे-धीरे एक ही वर्ण की विभिन्न जातियों में ऊँच-नीच की भावना पनपने लगी। उच्च जातियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हो गए, वहीं निम्न जातियों को कुछ निर्योग्यताओं से पीड़ित रहना पड़ा।

- जाति-व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति ने अन्तर्विवाह की नीति को अपनाया। प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायतें भी रही हैं जो जाति से संबंधित नियमों का पालन नहीं करने वालों को कठोर दंड देती रही है। यह व्यवस्था स्तरीकरण के बन्द प्रणाली के स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं। वर्तमान में जाति व्यवस्था के स्वरूप एवं कार्यों में विभिन्न कारणों से अनेक परिवर्तन आए हैं, परन्तु, आज भी अधिकांश भारतीयों के जीवन को जाति व्यवस्था अनेक रूपों में प्रभावित कर रही है।

धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह एवं संयुक्त परिवार

हिंदू दर्शन में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में देखा गया है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रजनन और यौन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परंतु, उसके उद्देश्यों में धर्म को प्रथम, प्रजनन को द्वितीय एवं रति को तृतीय स्थान प्रदान किया गया है और इस रूप में व्यक्ति के यौन व्यवहारों और प्रजनन कार्यों को धार्मिक आधार पर नियमित किया गया है।

- परंपरागत भारतीय समाज में संयुक्त परिवार भी उसका एक सांगठनिक आधार रहा है जो समाज की इकाई के रूप में अपने सदस्यों पर धर्मानुसार आचरण करने अर्थात् सामाजिक जीवन से संबंधित सभी कर्तव्यों का पालन करने का निर्देश देता था और इस प्रकार यह सामाजिक नियंत्रण की एजेंसी के रूप में क्रियाशील रहा है। परिवार की देख-रेख में व्यक्ति विभिन्न यज्ञों का क्रियान्वयन और वर्ण-धर्म का पालन करता रहा है। यद्यपि वर्तमान में औद्योगीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार, धर्म के प्रभाव में कमी आदि के कारण संयुक्त

परिवार कमजोर हुआ है और एकाकी परिवार की संख्या में वृद्धि हुई है तथापि अभी भी गाँवों में एक सामाजिक इकाई के रूप में यह महत्त्वपूर्ण है। साथ ही नगरों में भी संयुक्तता की भावना की विद्यमानता के रूप में इसको देखा जा सकता है।

भारतीय समाज के परंपरागत आधार: मूल्यांकन

- स्पष्ट है भारतीय समाज के कुछ ऐसे परंपरागत आधार रहे हैं, जिन्होंने समाज में समन्वयकारी प्रवृत्तियों के विकास में योगदान दिया है और व्यक्ति को समन्वित जीवन व्यतीत करने हेतु प्रोत्साहित किया है फलत: ये सभी समाज की इकाई या अंग के रूप में प्रकार्यात्मक संबंधों के आधार पर एक-दूसरे के साथ संबद्ध होते हुए परंपरागत हिंदू समाज को बनाए रहे और व्यक्ति की उन्नति के साथ-साथ समाज के विकास में भी सहायक रहे हैं।

भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता

परंपरागत भारतीय समाज में निम्न तत्त्व प्रमुख रहे हैं-

1. धर्म को समाज में केन्द्रीय स्थान प्राप्त है।
2. वर्ण व्यवस्था को प्रकार्यात्मक विशेषीकरण के एक सिद्धांत के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया है।
3. जाति व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण के विशिष्ट रूप में समाज को श्रेणीबद्ध करती है।
4. कर्म के सिद्धांत द्वारा व्यक्ति के भूत-वर्तमान और भविष्य के कर्म फलों को निश्चित किया गया है।
5. आश्रम व्यवस्था द्वारा विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के कार्यों को निश्चित किया गया है।
6. पुरुषार्थ व्यवस्था द्वारा सामाजिक लक्ष्यों व उनको प्राप्त करने के उचित साधनों की व्यवस्था की गई है।

- कालांतर में सामाजिक व्यवस्था के उपरोक्त तत्त्वों पर कई धर्मों एवं संस्कृतियों, जैसे-बौद्ध एवं जैन धर्म, इस्लाम धर्म, पश्चिमी-संस्कृति, आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण आदि का प्रभाव पड़ा। इन प्रभावों ने परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन लाकर इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है जहाँ व्यक्तिवादिता, समानता धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक मूल्य, परिवर्तन के प्रति आस्था केन्द्रीय मूल्य व्यवस्था के रूप में सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रियाशील हैं। परन्तु वर्तमान भारतीय समाज का यह नवीन स्वरूप परंपरागत समाज एवं उनके तत्त्वों को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है। अभी भी जाति-व्यवस्था, संयुक्त परिवार, विवाह के प्रथागत पक्ष और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है। अर्थात् वर्तमान भारतीय समाज निरंतरता के साथ परिवर्तन को दर्शाता है जहाँ परंपरागत समाज अपनी निरंतरता को बनाए रखे हुए है और आधुनिकता के साथ विद्यमान है।

भारतीय समाज में परिवर्तन के कारण

- परंपरागत भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है-

1. बौद्ध, जैन एवं इस्लाम धर्म के प्रभाव ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में समानता की भावना के साथ कर्मकांडों को लचीला बनाया है।
2. अंग्रेजी शिक्षा एवं ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से स्वतंत्रता, समानता व धर्मनिरपेक्षता जैसे आधुनिक मूल्यों का प्रसार संभव हुआ है।
3. धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा ने रोजमर्रा के जीवन में धर्म के प्रभाव को कम किया है।
4. ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा बनाए गए कानूनों ने विधि के समक्ष समता के रूप में धर्म संहिताओं के प्रभाव को कम किया है।
5. स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार ने जाति स्तरीकरण की व्यवस्था की कठोरता को कम किया है।
6. औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारतीय जाति व्यवस्था में गतिशीलता के अवसर प्रदान किए हैं।
7. भारतीय संविधान ने समान अवसर की स्थापना कर सभी को विकास के समान अवसर प्रदान करके एक समतामूलक समाज की दिशा में परिवर्तन को संभव बनाया है।
8. यातायात एवं संचार क्रांति द्वारा विभिन्न जातियों के बीच की सामाजिक दूरी कम हुई है और भेदभाव एवं असमानता के तत्त्व कमजोर हुए हैं।

भारतीय समाज में निरंतरता के कारण

- परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रकृति अनुकूलनकारी रही है जहाँ परंपरा की निरंतरता के साथ परंपरा में परिवर्तन होता रहा है। भारतीय परंपरा की इस निरंतरता के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के तहत देखे जा सकते है:-

1. भारतीय परंपराओं में निहित परिवर्तन की गुंजाइश तथा निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन ने इनको बदलती परिस्थितियों के साथ अनुकूलन में सहायता प्रदान की है।
2. परंपरागत भारतीय समाज में निहित परसंस्कृतिग्रहण और सात्मीकरण की प्रवृत्ति ने भारतीय समाज में सदैव गतिशीलता को बनाए रखा है।
3. भारतीय परंपराओं में निहित सामंजस्य या अनुकूलन की क्षमता ने भी परिवर्तन को पोषित किया है। फलत:

अनुकूलनकारी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर क्रियाशील रही है।

4. भारतीय परंपरा में विद्यमान सहिष्णुता की क्षमता के कारण विभिन्न समूहों में आपसी प्रतिस्पर्द्धा का अभाव पाया जाता रहा है जिसने परंपरा की निरंतरता में सहयोग किया है।

मूल्यांकन

- इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय समाज निरंतर गतिशील रहा है तथा परंपरा व आधुनिकता के सहअस्तित्व को परिलक्षित करता है। यह अनेक अंतर्जात एवं बहिर्जात स्रोतों के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के साथ अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परंतु, वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में परिवर्तन की गति इतनी तीव्र हो गई है कि परंपरा या निरंतरता के समक्ष गंभीर संकट महसूस किया जा रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

परंपरागत भारतीय समाज की तीन मुख्य विशेषताएं थीं:-

1. क्रम-विन्यास या सोपान
2. संपूर्णता की भावना
3. नैरन्तर्य की प्रवृत्ति

- परन्तु, कालांतर में इसका स्वरूप विकृत हो गया जिसमें सुधार की कोशिश दो तरीकों से की गई-

1. वैदिक परंपरा में थोड़ी फेर-बदल करके जैसे-शंकराचार्य, रामानुज और भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव आदि।
2. वैदिक परंपरा के मुख्य तत्त्वों से भिन्नता रखते हुए नई परंपरा की स्थापना करके, जैसे-बौद्ध और जैन धर्म का उदय।

- बौद्ध धर्म यथार्थवादी दृष्टिकोण (तर्क, बुद्धि एवं अनुभव पर जोर देने वाला) पर आधारित एवं अहिंसा व सदाचार पर बल देने वाला धर्म है। बौद्ध धर्म में देवी-देवताओं भाग्यवाद, पुनर्जन्म और ग्रहों-नक्षत्रों का प्रभाव आदि पर विश्वास नहीं किया जाता है और इस लौकिक जगत की यथार्थता पर बल दिया जाता है। फलत:, इस धर्म की बहुत सारी मान्यताओं ने हिंदू सामाजिक संगठन को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है इसीलिए जाति व्यवस्था का आधार जन्म नहीं कर्म होना चाहिए।
2. कोई भी व्यक्ति अपने 'स्व' को विकसित करके सोपानिक व्यवस्था के क्रम में ऊपर आ सकता है और निर्वाण प्राप्त कर सकता है।
3. स्त्रियों को भी पुरुषों के समान दर्जा मिलना चाहिए (संघ में प्रवेश की अनुमति देकर)।
4. दान की प्रथा द्वारा अधिशेष को पुनर्वितरित करने पर बल दिया गया जिससे समाज में समानता आ सके।
5. भाषायी सोपान को अस्वीकार करते हुए धर्म विधियों पर संस्कृत भाषा जानने वाले ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व को समाप्त करने का प्रयास किया गया। इसलिए बौद्ध धर्म द्वारा जन सामान्य की पालि भाषा को अंगीकार किया गया।

- यद्यपि बौद्ध धर्म में भी बहुत सी ऐसी सैद्धांतिक मान्यताएँ थीं जो क्रम-विन्यास को परिलक्षित करती थीं। परन्तु, यहाँ उल्लेखनीय है कि बुद्ध का उद्देश्य पूर्ण समानतायुक्त समाज की स्थापना करना नहीं बल्कि सभ्य समाज की स्थापना करना था। बौद्ध धर्म की इन मान्यताओं ने परंपरागत भारतीय समाज को कई रूपों में प्रभावित किया जिसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. बौद्ध धर्म की मान्यताओं के प्रभाव स्वरूप वर्ण व्यवस्था कमजोर हुई।
2. हिंदू धर्म में पुनर्जागरण शुरू हुआ तथा ब्राह्मणों की शक्ति एवं महत्त्व में कमी आई।
3. हिंदू धर्म में जन्म से अधिक चरित्र, योग्यता और कर्म पर बल दिया जाने लगा।
4. इसके प्रभाव स्वरूप सामाजिक जीवन में कर्मकांडों के महत्त्व में कमी आई।
5. इसके प्रभाव में हिन्दू समाज में निहित भाग्यवादी धारणा कमजोर हुई और कर्म का महत्त्व बढ़ा।
6. अहिंसा हिंदू समाज का मुख्य मूल्य बन गया। फलत: नर-बलि, पशु-बलि, माँसाहार में कमी आई और शाकाहार तथा जीवों के प्रति दया भाव में वृद्धि हुई।
7. व्यावहारिक कार्य को प्रेरणा देने वाली और लोक कल्याणकारी शिक्षा पर बल दिया जाने लगा।
8. इसने समानता, सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहित करके भारत में मानवतावादी और लोकोपकारी भावनाओं को प्रचलित किया।
9. इसने देशी भाषाओं को लोकप्रिय बनाकर देश की विभिन्न भाषाओं और बोलियों को समुचित महत्त्व दिया।
10. पंचशील, गुटनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक सहयोग, शांति के लिए प्रयास, गाँधी की अहिंसक नीति आदि के मूल में भी यह अभिप्रेरक के रूप में सहयोगी रहा।

- इस तरह बौद्ध धर्म ने परंपरागत हिंदू समाज की सोपानिक व्यवस्था को कमजोर किया और समतामूलक समाज को स्थापित किया जिसके कारण वह प्रसिद्ध हुआ और आज

तक व्यावहारिक मानवतावादियों को आकर्षित करता रहा है। यद्यपि इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म भी हिंदू सामाजिक संगठन से प्रभावित हुआ। कर्म का सिद्धांत, पुनर्जन्म का सिद्धांत, मूर्तिपूजा (महायान), मठ संबंधी कुरीतियाँ, सोपानिक व्यवस्था तथा अंतर्विवाही समूह के रूप में विकास आदि तत्त्व आज इस धर्म में भी दिखाई देने लगे हैं।

निष्कर्षत:

यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म एक वैचारिक आंदोलन के रूप में हिंदू सामाजिक संगठन के विभिन्न तत्त्वों को प्रभावित करते हुए स्वयं भी प्रभावित हुआ है और वर्तमान भारतीय समाज की प्रकृति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव

भारत में विभिन्न कालों में मुसलमानों के विभिन्न वंशों, जैसे- गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश एवं लोदी वंश आदि का 600 वर्षों तक शासन रहा। मुसलमानों से पूर्व जितने भी आक्रमणकारी यहाँ आए, जैसे-यवन, शक, हूण, कुषाण, सिथियन व मंगोलियन आदि वे सब भारतीय समाज में समाहित हो गए, किन्तु मुसलमानों का पृथक् अस्तित्व बना रहा क्योंकि दोनों के धर्म, संस्कृति, देवी-देवता, खान-पान एवं जीवनदर्शन में काफी अन्तर था। लम्बे समय तक हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के कारण कला, धर्म, साहित्य, परिवार, विवाह, संगीत और संस्कृति के कई क्षेत्रों में दोनों में बहुत आदान-प्रदान हुआ और दोनों ही परंपराओं में संघर्ष, तनाव, व्यवस्थापन और समन्वय की प्रक्रिया काफी लम्बे समय से चल रही है।

- इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव मुख्यत: नगरों तक सीमित रहा और ग्रामों में इसका प्रभाव कम रहा। चूँकि मुसलमान बाहर से आए थे और वे संख्या में कम थे किन्तु उन्होंने यहाँ के अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करवाकर मुसलमान बनाया। फलत: यहाँ के मुसलमानों में कई तत्त्व दोनों ही संस्कृतियों के साथ-साथ दिखाई देते हैं। साथ ही मुसलमान-शासक वर्ग के थे इसलिए भी जनता ने दबाव एवं स्वेच्छा से मुस्लिम संस्कृति को अपनाया। इस्लाम के भारतीय समाज पर प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:-

  1. हिन्दुओं में एकेश्वरवाद एवं निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ हुई। भक्ति आंदोलन एवं समतावादी आदर्शों का जन्म हुआ। कबीर पंथ, दादू पंथ, अद्वैतवाद, सिख धर्म, रामानुज, वल्लभाचार्य, चैतन्य एवं रैदास के धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ।
  2. हिन्दुओं में जातीय कठोरता कम हुई तथा अस्पृश्यता और ऊँच-नीच का भेद-भाव समाप्त होने लगा। जातीय कठोरता के कारण निम्न जातियों ने धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम को ग्रहण किया। भारतीय समाज में दास प्रथा, बेगारी आदि के प्रचलन में वृद्धि हुई।
  3. हिन्दुओं में मुस्लिम प्रभाव से पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ। बाल-विवाह बढ़े, विधवा पुनर्विवाह समाप्त हुए और सती प्रथा को महत्त्व दिया गया। बहु-पत्नी प्रथा एवं दहेज प्रथा में भी वृद्धि हुई।
  4. भारतीय संस्कृति पर भी इसका प्रभाव व्यापक रहा। मुस्लिम वेशभूषा, जैसे-चूड़ीदार पाजामा, अचकन एवं शेरवानी का प्रचलन शुरू हुआ। भोजन में माँसाहारी प्रवृत्ति बढ़ी। आज कलाकंद, बर्फी, गुलाब जामुन, बालूशाही, हलवा, इमरती एवं जलेबी मुसलमानों की ही देन है। उर्दू एवं खड़ी बोली का प्रादुर्भाव संभव हुआ। स्थापत्य कला के क्षेत्र में हिन्दुओं ने मुसलमानों से गुम्बद, ऊँची मीनारें, मेहराब तथा तहखाने बनाना सीखा। मुसलमानों ने अनेक हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर उनमें हेराफेरी करके उन्हें मस्जिदों के रूप में बदल दिया। चित्रकला के क्षेत्र में मनुष्यों, पशुओं, पुष्पों एवं पक्षियों के सजीव चित्र बनाना तथा विभिन्न रूपहले रंगों को भरना मुस्लिम संस्कृति की देन है। तुर्की व ईरान की प्यूराइड चित्रकारी मुसलमान ही भारत में लाए। मथुरा के द्वारकाधीश मन्दिर में इसी शैली में कृष्णलीला का चित्रण किया गया है। कव्वाली, गजल, ठुमरी तथा तबला व सितारवादन भी इस्लाम की ही देन है। इस युग में रंगाई-छपाई, बर्तन एवं दस्तकारी के उद्योग तथा धातु, शक्कर, ईंट, पच्चीकारी, कताई आदि व्यवसायों का भी काफी विकास हुआ।

- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस्लाम के प्रभाव के कारण भारतीय समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में प्रभावित हुआ और यह प्रभाव ब्रिटिश काल तक बना रहा। साथ ही केवल हिन्दुओं ने ही इस्लाम से ग्रहण नहीं किया वरन् मुसलमानों ने भी हिन्दू संस्कृति के अनेक तत्त्वों को ग्रहण किया। मुसलमानों में क्रूरता कम हुई, उनमें भक्ति, श्रद्धा, सहृदयता व दयालुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। उन्होंने भी हिन्दुओं के खान-पान, जाति-प्रथा, उत्सवों एवं अन्धविश्वासों को ग्रहण किया। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों के संपर्क से एक नवीन संस्कृति हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का जन्म हुआ।

भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएँ

संस्कृतिकरण (Sanskritisation)

- संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रयोग भारतीय सामाजिक-संरचना में सांस्कृतिक गतिशीलता की प्रक्रिया के विश्लेषण हेतु ***एम.एन. श्रीनिवास*** द्वारा किया गया। इनके अनुसार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न

हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा कोई अन्य समूह किसी उच्च और प्रायः द्विज जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन-पद्धति को बदलता है।'' साधारणतः ऐसे परिवर्तनों के बाद निम्न जाति जातीय सोपान में उच्च स्थिति का दावा करने लगती है।

- इस प्रकार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई निम्न हिंदू जातीय-समूह अथवा कोई जनजातीय समूह अपनी संपूर्ण जीवन-विधि को उच्च जातियों या वर्णों की दिशा में बदल कर अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है और जातीय संस्तरण की प्रणाली में उच्च होने का दावा प्रस्तुत करता है।
- संस्कृतिकरण के बारे में उपरोक्त विवेचन के आधार पर इसके निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है-

1. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध निम्न हिंदू जातियों, जनजातियों तथा कुछ अन्य समूहों (हिंदू धर्म व संस्कृति से भिन्न) से है।
2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत अपने से उच्च जातियों की जीवन, उनकी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, खान-पान, विश्वासों एवं मूल्यों का अनुकरण करते हुए उन्हें अपनाने का प्रयास किया जाता है।
3. संस्कृतिकरण के माध्यम से किसी जातीय-समूह की स्थिति आसपास की जातियों से कुछ ऊपर उठ जाती है परंतु स्वयं जाति-व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
4. संस्कृतिकरण केवल सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया नहीं है बल्कि सांस्कृतिक परिवर्तनों की भी एक प्रक्रिया है। इसमें भाषा, साहित्य, संगीत, विज्ञान, दर्शन, औषधि तथा धार्मिक विधान आदि के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन भी शामिल हैं।
5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध किसी व्यक्ति या परिवार से नहीं होकर समूह से होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा कोई जातीय या जनजातीय समूह अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है।

भारत में संस्कृतिकरण के सामाजिक प्रभाव निम्न रहें हैं:-

1. संस्कृतिकरण से निम्न जातीय समूहों की प्रस्थिति में सुधार तथा जातीय गतिशीलता संभव होती है।
2. इससे निम्न जातीय समूहों की जीवन-शैली में परिवर्तन होता है और उनके द्वारा निकृष्ट समझी जाने वाली क्रियाओं को छोड़ दिया जाता है।
3. इससे महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट आती है या उच्च जातियों की तरह पितृसत्तात्मकता के प्रबल स्वरूप का उद्भव होता है जिससे महिलाओं पर पुरुषों का नियंत्रण बढ़ जाता है।
4. इससे जातीय प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष में वृद्धि होती है क्योंकि उच्च जातियाँ संस्कृतिकरण को रोकने का प्रयास करती हैं।

पश्चिमीकरण (Westernization)

- पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग मुख्यतः उन परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए किया गया है जो भारत में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी राज्य की अवधि में प्रारंभ हुए। पश्चिमीकरण में भारतीय समाज और संस्कृति में एक सौ पचास वर्षों से अधिक समय के अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप लाए गए परिवर्तन शामिल हैं और इस शब्द में विभिन्न स्तरों, प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधाराओं तथा मूल्यों में होने वाले परिवर्तन सम्मिलित हैं। मानवतावाद तथा तार्किकता पर जोर पश्चिमीकरण का एक अंग है जिसने भारत में संस्थागत तथा सामाजिक सुधारों की श्रृंखला आरंभ कर दी। वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक तथा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, देश में नवीन राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व सबके सब पश्चिमीकरण के उप-उत्पाद हैं।
- भारत में अंग्रेजी राज्य-स्थापना के पश्चात् अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रौद्योगिक शक्तियाँ कार्य करने लगी। इन शक्तियों ने देश के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया। अंग्रेजों के पास राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के साथ एक नवीन प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक ज्ञान तथा महान साहित्य था। इनसे प्रभावित होकर उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों का अनुसरण करना प्रारम्भ किया, उनकी प्रथाओं और आदतों को अपनाया। अंग्रेज जातीय संस्तरण की प्रणाली में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गए और ब्राह्मणों का स्थान द्वितीय हो गया। जहाँ निम्न जातियाँ अपनी सामाजिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने की दृष्टि से अपने से उच्च जातियों और ब्राह्मणों के जीवन के तरीके को अपनाने में लगी हुई थीं वहाँ ब्राह्मणों तथा कुछ अन्य उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों के जीवन के तरीके को अपनाने में तत्परता दिखाई। इस प्रकार देश में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।
- पश्चिमीकरण के कारण ब्राह्मणों को अंग्रेजों और यहाँ के शेष लोगों के बीच मध्यस्थ के रूप में भूमिका निभाने का सुअवसर मिला। परिणाम यह हुआ कि एक नवीन और लौकिक जाति व्यवस्था का परंपरागत व्यवस्था पर आधिपत्य हो गया जिसमें नवीन क्षत्रिय शिखर पर थे और ब्राह्मण दूसरे स्थान पर तथा जनसंख्या के शेष लोग जातीय पिरामिड के निम्नतम स्थान पर थे। संस्तरण की इस नवीन प्रणाली में ब्राह्मण अंग्रेजों का अनुकरण कर रहे थे और बाकी सभी लोग ब्राह्मणों और अंग्रेजों दोनों का ही अनुकरण कर रहे थे। संस्तरण की नवीन प्रणाली में ब्राह्मणों की स्थिति निर्णायक थी। उनके माध्यम से पश्चिमीकरण हिन्दू समाज के अन्य लोगों तक पहुँचा।

- पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं में प्रमुखत: उन लोगों ने भाग लिया जो नवीन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर व्यवसायों में, ऊँची नौकरियों में, नगरों में व्यापार और उद्योग-धंधों में लग गए थे। यातायात और संचार के साधनों के विकास, औद्योगीकरण, कृषि क्षेत्र में होने वाले विकास तथा अभिजात वर्ग व ग्रामीणों की क्षेत्रीय तथा सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को तीव्र और साथ ही राष्ट्रव्यापी बना दिया। बड़े नगरों और समुद्री किनारों पर रहने वाले लोगों का पश्चिमीकरण सबसे पहले हुआ।
- पश्चिमी प्रभाव के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक भारत में ऐसे नेताओं के वर्ग का उदय हो चुका था जो नवीन और आधुनिक भारत के लिए प्रकाश स्तंभ बना। बहुत से नेता (जैसे-टैगोर, विवेकानंद, रानाडे, गोखले, तिलक, पटेल, गाँधी, जवाहरलाल नेहरू तथा राधाकृष्णन आदि) मौजूदा सामाजिक कुरीतियों, जैसे-बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, स्त्रियों को पृथक्करण में रखना, स्त्री-शिक्षा का विरोध, अस्पृश्यता तथा अन्तर्जातीय विवाह निषेध आदि के प्रति जागरुक थे। समाज सुधार की प्रक्रिया में इस अभिजात-वर्ग ने अनुभव किया कि भारत को आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने के कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पचास वर्षों में काफी राष्ट्रीय जागृति हुई। इस अवधि में रेलों का निर्माण, छापेखाने का विकास तथा शिक्षा प्रसार आदि ने राष्ट्रीयता के भावों को जागृत करने में काफी सहयोग दिया। इस प्रकार पश्चिमीकरण ने केवल अभिजात-वर्ग के उदय में ही नहीं बल्कि हिन्दू समाज को अनेक कुरीतियों से मुक्त करने, राष्ट्रीयता के भाव जगाने और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आंदोलन करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।
- पश्चिमीकरण का भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव संयुक्त परिवार प्रणाली, हिन्दू विवाह तथा जाति-व्यवस्था पर देखने को मिलता है। पश्चिमीकरण ने व्यक्तिवादिता को प्रोत्साहित किया है जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की संरचना में परिवर्तन हो रहा है। अब पश्चिमीकरण के प्रभाव से शिक्षित युवक-युवतियाँ विवाह को जन्म-जन्मांतर का संबंध नहीं मानकर एक समझौता मानने लगे हैं। अब पति-पत्नी के संबंध समानता पर आधारित होने लगे हैं। पश्चिमीकरण के कारण विभिन्न जातियों के सदस्यों को कारखानों तथा अन्य क्षेत्रों में साथ-साथ काम करने का अवसर मिलने लगा है जिससे जातिगत दूरी पहले की तुलना में कम हुई है। पश्चिमीकरण के कारण स्तरीकरण के नवीन आधार के रूप में वर्गों का भी महत्त्व बढ़ने लगा है।
- पश्चिमीकरण के कारण गाँवों में व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति एवं परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित नहीं होकर उसकी स्वयं की योग्यता पर आधारित होती है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण क्षेत्रों में जाति पंचायतों के विघटन में योगदान दिया है। ग्रामीण समुदायों में भी व्यक्तिवादिता का प्रभाव स्पष्टत: दिखलाई पड़ने लगा है। पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण सामाजिक संगठन में पारिवारिकता का महत्त्व कम हुआ है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं को जन्म दिया है जिनसे भारतीय ग्राम भी अप्रभावित नहीं रहे हैं। ग्रामों में आजकल सामुदायिक भावना शिथिल पड़ रही है तथा स्थानीयता का महत्त्व कम होता जा रहा है। इस प्रक्रिया के कारण भारतीय ग्रामों में समाचार-पत्रों, रेडियो तथा चुनाव आदि का प्रादुर्भाव हुआ है।

आधुनिकीकरण (Modernization)

- भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ ब्रिटिश शासन की स्थापना एवं उसके संपर्कों का परिणाम है। अंग्रेजों द्वारा भारत पर विजय की प्रक्रिया लगभग एक शताब्दी तक चलती रही। स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए भारत में कुछ नई तकनीकी और संरचनाओं की स्थापना की। उत्पादन में नई मशीनी तकनीकी, व्यापार की नई बाजार प्रणाली, यातायात और संचार के साधनों का विकास, कर्मचारी तंत्र पर आधारित सिविल सेवा, औपचारिक और लिखित कानून की स्थापना, आधुनिक सैन्य संगठन, पृथक् न्यायिक व्यवस्था और आधुनिक औपचारिक शिक्षा व्यवस्था वे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन थे जिन्होंने आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की।
- पश्चिमी शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं के नए अवसरों ने भारतीय समाज में एक ऐसे प्रबुद्ध वर्ग को जन्म दिया जो अपने समाज की दीन-हीन दशा पर विचार करने के लिए बाध्य हो गया। इसी वर्ग के नेतृत्व में भारत में समाज सुधार आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी प्रबुद्ध वर्ग और उभरते हुए पूँजीवादी वर्ग में राष्ट्रीय चेतना का जागृत होना भी स्वाभाविक था क्योंकि उनके हितों का संरक्षण इस बात में था कि अंग्रेज अपनी नीतियों में इस प्रकार संशोधन करें जिससे नीति-निर्माण में और प्रशासन में अधिक से अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिल सके और व्यापारी और उद्योगपति प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त कर सकें। इन वर्ग-हितों ने राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया जो धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया।
- स्वतंत्र भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया योजनाबद्ध और तीव्र गति से हुई है। भारतीय संविधान बनाकर और उसे व्यवहार में क्रियान्वित कर भारत ने सर्वप्रथम राजनीतिक आधुनिकीकरण किया। भारतीय समाज की बहुलवादी विशेषता को देखते हुए आधुनिकीकरण का अपना एक अलग

और विशिष्ट मॉडल अपनाया गया है। इसमें समाजवाद, लौकिकवाद, उद्योगवाद, प्रजातंत्र, समतावाद एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मौलिक अधिकार आदि मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। इनमें से अधिकांश मूल्य धर्म और जाति पर आधारित परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना के विपरीत हैं इसलिए भारतीय समाज में मूल्य-संघर्ष एक अनिवार्य लक्षण बन गया है।

- शिक्षा को आधुनिकीकरण की एक पूर्व शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वतंत्र भारत ने निरक्षरता उन्मूलन और सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य सामने रखे हैं। आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के अनुसंधान, शिक्षण और प्रशिक्षण के विकास के लिए विशेष उपाय अपनाए गए हैं।
- भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ लौकिकीकरण व तार्किकता में वृद्धि, गैर-कृषि व्यवसायों में लगे लोगों में बढ़ोत्तरी, नगरीकरण व औद्योगीकरण में वृद्धि, मृत्यु दर में कमी, परिवार नियोजन को मान्यता, आवागमन व संचार साधनों का विकास, शिक्षा का विस्तार, राष्ट्रीय व राजनीतिक चेतना आदि में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर जन साधारण की आशाएँ व माँगें इतनी बढ़ गई हैं कि उनमें वर्तमान सामाजिक- आर्थिक व राजनीतिक परिस्थिति के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया है। तीव्र परिवर्तन से ठीक प्रकार से सामंजस्य न कर पाने के कारण विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है। प्राचीन व नवीन मान्यताओं में संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत में समन्वय व नियंत्रण की समस्या उत्पन्न हो गई है। व्यक्तिवादिता की वृद्धि ने व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामुदायिक विघटन की परिस्थिति उत्पन्न कर दी है।

आधुनिक भारतीय समाज के लक्षण

परंपरागत भारतीय समाज के प्रमुख लक्षण तथा भारतीय समाज में क्रियाशील सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं पर विचारोपरांत आधुनिक भारतीय समाज के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. ***विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसंख्या–*** जनसंख्या के आधार पर भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है, परन्तु यह जनसंख्या विविधताओं से परिपूर्ण है जैसे-मैदानी भागों एवं तटीय प्रदेशों का जन घनत्व अत्यधिक है वहीं पहाड़ी व मरुस्थलीय प्रदेशों का जन घनत्व अति निम्न हैं। यहाँ बहुसंख्य जनसंख्या हिन्दुओं की है (81%) तो यहाँ मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि समुदाय भी निवास करते है। केरल जैसे प्रदेश का लिंगानुपात अति उच्च है तो हरियाणा, पंजाब जैसे प्रदेश भी है जहाँ लिंगानुपात अति निम्न है। कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का अधिकत्तर भाग साक्षर हैं (केरल) तो कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभी भी निरक्षर हैं (बिहार)।
2. ***विविधता में एकता–*** भारतीय समाज एक बहुलक समाज है जहाँ कई धर्म, प्रजाति, जाति, संस्कृति, आदि के लोग एक साथ रहते हैं।

   यहाँ कई तरह की भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं और हजारों त्यौहार मनाए जाते हैं। परन्तु इन विविधताओं में एक विशेष प्रकार की एकता परिलक्षित होती है। एक सामान्य शासन प्रणाली, एक सामान्य तीर्थ स्थल, संस्कृति, भारतीय समाज को एकता के सूत्र में जोड़ती है।
3. ***परंपरागत मूल्यों के साथ आधुनिक मूल्यों की विद्यमानता–*** समकालीन भारतीय समाज स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों से निर्मित समाज है। परन्तु यहाँ आधुनिक समाज परंपरागत समाज को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है बल्कि इस परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को ये परंपरागत मूल्य प्रभावित करते हैं। इसीलिए वर्तमान भारतीय समाज के बारे में कहा जाता है कि भारतीय समाज का आधुनिकीकरण मूलतः परंपरा का आधुनिकीकरण है। यहाँ आधुनिकता के मूल्यों के साथ समायोजन स्थापित करते हुए भारतीय परंपरा ने स्वयं को आधुनिकीकृति कर दिया है।
4. ***धार्मिक मान्यताओं के साथ धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों की विद्यमानता और धर्म के नवीन स्वरूप पर प्रभाव–*** वर्तमान भारतीय समाज एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष समाज की ओर अग्रसर है, साथ ही धार्मिक मान्यताएँ भी हमारे जीवन में अपने महत्त्व को बनाए हुए हैं। आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ धर्म के अतार्किक मान्यताओं एवं रूढ़ियों में कमी आई है और धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण और तार्किकीकरण संभव हुआ है। आज भारत में धर्म कुछ नए रूपों में भी क्रियाशील हुआ है जैसे-धर्म का राजनीतिकीकरण, धर्म का बाजारीकरण धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद, धार्मिक रूढ़िवाद, आदि। आज राजनीतिक दलों द्वारा मतों को लामबंद करने हेतु धर्म का प्रयोग किया जा रहा है तो दूसरी तरफ जनता भी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के एक सांगठनिक आधार के रूप में धर्म का प्रयोग कर रही है।
5. ***जाति व्यवस्था नवीन रूपों में क्रियाशील–*** वर्तमान भारतीय समाज में जाति व्यवस्था अपनी महत्ता बनाए हुए है। यद्यपि इसका कर्मकांडीय पक्ष कमजोर हुआ है तथापि जन्मजात सदस्यता, अंतरविवाही समूह और कुछ नवीन संदर्भों में यह समस्त भारत में क्रियाशील है।

   आज भारत सरकार ने आरक्षण के आधार के रूप में और जनगणना के आधार के रूप में जाति को निरंतरता प्रदान की है। राजनीतिक दलों द्वारा भी मतों को लाभबंद करने और सत्ता को प्राप्त करने के लिए जाति का प्रयोग किया

जा रहा है। आज जाति कई राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार के रूप क्रियाशील है।

6. ***वर्ग असमानता एवं वर्ग स्तरीकरण का विकास***- परंपरागत भारतीय समाज में असमानता और स्तरीकरण का प्रमुख स्वरूप जाति था, परन्तु वर्तमान में धन के महत्त्व में वृद्धि हुई है और वर्ग असमानता और वर्ग स्तरीकरण (आर्थिक आधार पर निर्मित असमानता एवं ऊंच-नीच का भेदभाव) का उद्भव संभव हुआ है। यद्यपि भारत सरकार ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में निर्धारित करके निरंतर इस असमानता को दूर करने का प्रयास करती रही है। फिर भी यह असमानता आज बनी हुई है और आर्थिक सुधार की नवीन प्रक्रिया ने इसकी निरंतरता को और पुष्ट किया है।

7. ***एकाकी परिवार के साथ संयुक्त परिवार की विद्यमानता***- वर्तमान भारतीय समाज में एकाकी परिवार का तीव्रता से विकास हुआ है विशेषकर नगरों में इस तरह के परिवारों की बहुलता है जिसमें पति, पत्नी एवं उनके अविवाहित बच्चे शामिल होते हैं।

   परंतु ये एकाकी परिवार पश्चिमी समाजों की तरह अलग-थलग एकाकी परिवार (Isolated Nuclear Family) नहीं है बल्कि यह अपने नातेदारों के साथ जुड़े हुए होते हैं। नगरों में रहने वाले ये एकाकी परिवार गाँव के पृथक परिवार की एक शाखा के रूप में विद्यमान होते हैं और पर्व, त्यौहार, शादी विवाह आदि के अवसर पर एकत्रित होकर और एक दूसरे के समय-समय पर सहयोग देकर अपनी संयुक्तता को अभिव्यक्त करते हैं। इस तरह वर्तमान भारतीय समाज में भी संयुक्त परिवार की निरंतरता बनी हुई है। परन्तु यह भी सत्य है कि इनके बीच संबंधों की प्रगाढ़ता में कमी आई है।

8. ***पितृसत्तात्मकता में कमी और स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार***- यह सही है कि आज भी भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में लिंग असमानता विद्यमान है परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि यह पितृसत्तात्मकता पहले की अपेक्षा काफी कमजोर हुई है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण ने लिंग समानता की दिशा में सामाजिक बदलाव को संभव बनाया है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों के समान सहभागिता दर्ज करने में लगी हुई हैं।

9. ***धार्मिक स्वरूप के साथ विवाह के आधुनिक रूप का विकास***- वर्तमान भारतीय समाज में विवाह पूर्णतः एक धार्मिक संस्कार नहीं रह गया है। बावजूद इसके अग्नि के सात फेरे, मंत्रोंच्चारण आदि धार्मिक कृत्यों की प्रधानता बनी हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा विवाह विच्छेद को वैधानिक मान्यता दे देने से भारत में हिन्दुओं में विवाह एक समझौता का रूप धारण कर चुका है। परंतु व्यवहार में आज भी हिन्दू पति पत्नी अपने संबंधों को आजन्म निभाने का प्रयास करते हैं। भारत में मुस्लिम समुदायों में भी विवाह के आधुनिक रूपों का विकास हुआ है और बहुपत्नी विवाह और तलाक से मुसलमान परहेज करने लगे हैं। आज भी भारत के जनजातियों में विवाह के कुछ परंपरागत रूप जैसे गोल गधेड़ों, हरण विवाह, सेवा विवाह, अनादर विवाह आदि देखे जा सकते हैं परन्तु इनमें भी अब आधुनिक विवाह की ओर परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है।

   आज भारत में मुख्यतः हिन्दुओं में विवाह संबंध निषेध (जाति बर्हिविवाह, गोत्र, अंतरविवाह, सप्रवर विवाह, सपिण्ड विवाह आदि) कमजोर हुए हैं और विवाह संबंधी नियमों में जातीय अंतरविवाह भी अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परन्तु यहाँ भी अंतरजातीय विवाह की घटनाएँ दिखाई देने लगी हैं। भारत सरकार द्वारा अंतरजातीय विवाह को सामुदायिक एकीकरण हेतु आवश्यक मानते हुए उत्साहित किया जा रहा है और अनुलोम विवाह पर 50,000 रुपये की धनराशि प्रदान की जाती है। गोत्र बर्हिविवाह के नियम यद्यपि महत्त्वहीन होते जा रहे हैं तथापि कुछ जातियों द्वारा आज भी इसको शक्ति से लागू करवाने का प्रयास किया जा रहा है (जाट जाति में खाप पंचायत द्वारा) और इस नियम का उल्लंघन करने वालों को बँधवाकर या हत्या करके दंडित किया जा रहा है। आज भारत में विवाह के कुछ नवीन रूप भी दृष्टिगत होने लगे हैं जैसे विवाह का बाजारीकरण (राहुल महाजन) ख्याति प्राप्ति हेतु विवाह (सलमान रूश्दी-पद्मा लक्ष्मी) आदि।

10. ***शिक्षा व्यवस्था में आधुनिकता***- वर्तमान भारत में यद्यपि परंपरागत कर्मकांडीय शिक्षा आंशिक तौर पर विद्यमान है तथापि आधुनिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ है। इस आधुनिक शिक्षा में उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, माध्यमिक एवं प्राथमिक शिक्षा से लेकर साक्षरता तक को शामिल किया जाता है। हालाँकि अभी भी संपूर्ण भारतीयों को आधुनिक शिक्षा से शिक्षित नहीं किया जा सका है और शैक्षिक असमानता धार्मिक स्तर पर, जाति स्तर पर, लैंगिक स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर विद्यमान है फिर भी हम इस दिशा में निरंतर प्रयासरत हैं।

11. ***लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं लोकतांत्रिक समाज का निर्माण क्रियाशील***- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक विकसित समाजवादी भारतीय समाज के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया और इसके लिए लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार किया गया। यह लोकतांत्रिक राज्य भारत में एक प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील रहा है जो निरंतर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है। इसके लिए लोकतांत्रिक राज्य में निरंतर लोकतांत्रिक संस्थाओं के अधिकाधिक विकास द्वारा

राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाकर लोकतंत्र को वास्तविक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है ताकि आधुनिक भारतीय समाज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस दिशा में दबाव समूहों की संख्या में वृद्धि, राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि, सूचना का अधिकार, नवीन पंचायतीराज का उद्भव आदि प्रमुख प्रयास रहे हैं।

12. ***आधुनिक कृषि अर्थव्यवस्था, औद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं सेवा अर्थव्यवस्था–*** परंपरागत रूप से भारतीय समाज कृषि प्रधान समाज था, परन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ कृषि व्यवस्था को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया (ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग) वहीं आधुनिक उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र का भी तीव्रता से विस्तार हुआ है।

    आज हमारे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में आधे से अधिक भाग में सेवा क्षेत्र ही योगदान करता है। आज BPO, सॉफ्टवेयर, बैंकिंग, बीमा, होटल, पर्यटन जैसे क्षेत्रों ने व्यापक महत्त्व प्राप्त कर लिया है।

13. ***नगरीकरण एवं अतिनगरीकरण–*** आधुनिक उद्योगों के विकास ने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है। वर्ष 1901 में जहाँ जनसंख्या का 11% ही नगरों में निवास करता था वहीं आज लगभग 32% जनसंख्या नगरों में रहती है। दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगर तो आज अति नगरीकरण के शिकार हैं।

14. ***जनजातियों का आधुनिकीकरण–*** जनजातीय समुदाय भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग है जिनकी संख्या लगभग 8.6% है। इसमें संथाल, भील, मीणा, गारो, खासी, हो, बैगा, गोण्ड आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं। ये जनजातियाँ भारत की सर्वाधिक पिछड़ा समुदाय है। सरकार के प्रयास से इनका तीव्रता से विकास हुआ है और इनके सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का काफी हद तक आधुनिकीकरण संभव हुआ है। आज ये जनजातियाँ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में, प्रशासनिक व्यवस्था में, शिक्षा व्यवस्था में, आर्थिक व्यवस्था में बढ़ चढ़कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं। परन्तु इनका एक भाग आज भी पिछड़ेपन का शिकार है।

15. ***वैश्विक संस्कृति का प्रसार और वैश्विक समाज का निर्माण–*** आर्थिक सुधार के बाद होने वाली संचार क्रांति ने भारत के सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों का फैलाव विश्व के अन्य देशों तक कर दिया है और फलतः विश्व के अन्य देशों की संस्कृति का भारतीय समाज पर प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई देने लगा है रहन-सहन, खानपान, जीवनशैली, वस्त्र, साज-सज्जा आदि सभी क्षेत्रों पर इनका प्रभाव देखा जा सकता है। चाऊमीन, मोमोज से लेकर पिज्जा तक और वेलेंटाइन डे, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसे नवीन तरीकों का प्रचलन आज इसी वैश्विक संस्कृति के प्रसार का परिणाम है। इसके कारण आज भारतीय समाज एक वैश्विक समाज का स्वरूप लेता जा रहा है।

भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : समकालीन मुद्दे

भारत में परंपरा, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण

- 'परंपरा' संस्कृत शब्द 'ऐतिह' तथा अंग्रेजी शब्द 'Tradition' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ है, विरासत में प्राप्त होना अर्थात् परंपरा शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जिसका उद्गम स्मृतियों, ऋषि-मुनियों के आप्त वाक्यों अथवा पौराणिक नायकों द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान से हुआ है। दूसरे शब्दों में, हमारे पूर्वजों द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, विश्वासों व कार्य करने के तरीके जो हमें विरासत में प्राप्त होते हैं, परंपरा कहे जाते हैं। स्पष्ट है, परंपरा किसी समुदाय का वह संचरित मूल्य एवं मान्य व्यवहार है जो दीर्घकाल से चला आ रहा है।
- परंपराएं अतीत के द्वारा हस्तांतरित विश्वासों और व्यवहारों की पूँजी होती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने के कारण इनके बारे में यह विश्वास जम जाता है कि ये मूल्यवान हैं और समाज की एकता एवं सामाजिक सुदृढ़ता के लिए उपयोगी हैं। परंपरा की धारणा जैसा है उसी को अपनाने की प्रवृत्ति पर जोर देती है और नवीनता के प्रति संदेह या भय की धारणा रखती है और इसका विरोध करती हैं।
- परंपराएँ पूर्णतः स्थिर नहीं होती हैं तथा स्थान व समय के अनुसार इनमें भी बदलाव आता रहता है। इस बदलाव की प्रक्रिया में कई बार पुरानी व उपयोगिताहीन परंपराएँ समाप्त हो जाती हैं तो कई बार यह अपने बदले हुए रूप के साथ अपनी निरंतरता को बनाए रखती हैं।
- परंपरा के उपरोक्त अवधारणात्मक विश्लेषण के आधार पर यदि भारतीय परंपरा पर विचार किया जाए तो इसके निम्न लक्षण परिलक्षित होते हैं–
    1. धर्म की प्रधानता परंपरागत भारतीय समाज का केन्द्रीय तत्त्व रहा है और सामाजिक जीवन के सभी पक्ष इसी के इर्द-गिर्द संगठित रहे हैं।
    2. परलोकवादिता को भी धर्म के संदर्भ में भारतीय परंपरा के प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज के लोगों की क्रियाओं की उन्मुखता इहलोक के बजाय पारलौकिक जगत की ओर होती है। भारतीय परंपरा में निहित जीवनचक्र के संस्कार, मोक्ष का लक्ष्य आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।
    3. संस्तरण भी परंपरागत भारतीय समाज का एक प्रमुख लक्षण है जो जाति व्यवस्था, गुण, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ आदि सभी में दृष्टिगत होता है।

4. भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख लक्षण इसमें निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन की विद्यमानता है, जिसके चलते इसमें परिवर्तन की गुंजाइश सदैव बनी रहती है। भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म का उद्भव परंपरा में इस लक्षण की विद्यमानता की पुष्टि करते हैं।
5. सामंजस्य एवं सात्मीकरण को भी भारतीय परंपरा के प्रमुख लक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारत में शक, हूण, कुषाण आदि का आगमन और भारतीय परंपरा के साथ उनका संपर्क तथा उनके साथ भारतीय परंपरा का सामंजस्य और स्वयं में उनको आत्मसात करने की प्रवृत्ति ऐतिहासिक रूप से विद्यमान रही है।
6. सहिष्णुता भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख गुण रहा है और अन्य संस्कृतियों एवं परंपराओं के प्रति यह कभी भी कठोर नहीं रहा है। एक तरफ इस्लाम धर्म के विरूद्ध बोलने पर **सलमान रुश्दी** पर फतवा जारी कर देना तथा दूसरी तरफ **एम. एफ. हुसैन** द्वारा हिन्दू देवियों का नग्न चित्र बनाने पर उनको कलाकार कहकर सहन कर लेना इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर परिलक्षित करता है।
7. भारतीय परंपरा का एक और प्रमुख गुण इसकी निरंतरता है। भारतीय परंपरा में विद्यमान निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलापन, सहिष्णुता, सामंजस्य एवं सात्मीकरण के लक्षणों ने इसकी निरंतरता को संपोषित किया है और तमाम परिवर्तनों के बाद भी आज भारतीय परंपरा अपनी निरंतरता को बनाए हुए हैं।

आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण (Modernity and Modernization)

- 'आधुनिक' शब्द अंग्रेजी शब्द 'Modern' का हिन्दी अनुवाद है जिसका अर्थ है प्रचलन या फैशन, अर्थात् जो भी समकालीन है या जिसका वर्तमान समय में प्रचलन है वही आधुनिक है, चाहे वह अच्छा है या बुरा, हम उसे चाहते हैं अथवा नहीं। आधुनिकता का यह अर्थ वृहद् संदर्भ को प्रस्तुत करता है परंतु अपने वर्तमान और विशिष्ट संदर्भ में बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर तरीके को आधुनिकता कहा जाता है जिसमें प्रगति की आकांक्षा विकास की आशा और परिवर्तन के अनुकूल अपने आप को ढालने का भाव निहित होता है। यह इस बात पर बल देती है कि बौद्धिक एवं तार्किक विश्व-दृष्टि के माध्यम से सामाजिक प्रगति हासिल की जा सकती है। अपने इस विशिष्ट अर्थ में आधुनिकता की शुरूआत यूरोप में प्रबोधनकाल से मानी जाती है किन्तु एक ठोस विचारधारा के रूप में इसका विकास 20वीं सदी के अंतिम वर्षों में ही संभव हुआ है।
- अपने समकालीन एवं विशिष्ट संदर्भ में आधुनिकता के कई लक्षण बताए गए हैं जिनमें परानुभूति, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी, भविष्योन्मुखता, व्यक्तिवादिता आदि प्रमुख हैं।
- आधुनिकता के उपरोक्त लक्षणों के अनुरूप सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि पक्षों में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा परंपरागत या पूर्व औद्योगिक समाज आधुनिक समाज की विशेषताओं को अपनाते हैं। इस तरह आधुनिकीकरण 'आधुनिकता' के उन क्षेत्रों में प्रसार की प्रक्रिया है जो अभी तक परंपरागत हैं या आधुनिक नहीं हैं। इसके द्वारा परंपरागत या पूर्व आधुनिक समाज समूहवाद, भाग्यवाद, रूढ़िवाद व धर्मान्धता से मुक्ति प्राप्त करता है और आधुनिक समाज के रूप में तब्दील हो जाता है।
- आधुनिकीकरण किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं होता है बल्कि इस प्रक्रिया को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इन क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को निम्न रूपों में देखा जा सकता है-
  1. सामाजिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति के महत्त्व में वृद्धि, पुरानी धारणाओं को त्याग कर नए व्यवहारों को अपनाने की प्रवृत्ति तथा संरचनात्मक विभेदीकरण में वृद्धि के रूप में घटित होती है।
  2. राजनीतिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया नागरिकों द्वारा सार्वभौमिक सत्ता की वैधता की प्राप्ति, नागरिकों में वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण, समाज के केन्द्रीय कानून, प्रशासनिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार एवं प्रसार तथा प्रशासकों द्वारा जनता की भलाई के लिए नीति-निर्माण आदि के रूप में दृष्टिगत होता है।
  3. आर्थिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया उत्पादन, वितरण, आवागमन तथा संचार हेतु पशु एवं मानवीय शक्ति के स्थान पर अमानवीय अर्थात् जड़ शक्ति का प्रयोग, मशीनों, तकनीकी एवं औजारों का अधिकाधिक प्रयोग, उच्च तकनीकी के परिणामस्वरूप उद्योग, व्यापार, व्यवसाय आदि में वृद्धि, औद्योगीकरण में तीव्र वृद्धि, आर्थिक कार्यों में उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि आदि के रूप में क्रियाशील होती है।

भारत में औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान आधुनिकीकरण की शुरूआत

- भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना 17वीं शताब्दी में हुई और इसके साथ ही भारतीय समाज का संपर्क आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के साथ व्यापक रूप से संभव हुआ। फलत: भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ औपनिवेशिक

शासन के प्रमुख प्रभावों में से एक था। अंग्रेजों द्वारा भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए कुछ नई तकनीक एवं संरचनाओं को भारतीय समाज पर लागू किया गया और इसी के साथ भारत में आधुनिकीकरण का प्रवेश संभव हुआ।

- अंग्रेजों द्वारा अपने लाभ हेतु उत्पादन में नई मशीनी तकनीक का प्रयोग करके औद्योगीकरण की नींव रखी गई तथा व्यक्ति की योग्यता को महत्त्व प्रदान किया गया, व्यापार की नई बाजार प्रणाली को लागू किया गया, अपने व्यापार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु तथा प्रशासन को दुरूस्त करने हेतु यातायात एवं संचार के आधुनिक साधनों का विकास किया गया, नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया गया और इस तरह भारत में आर्थिक क्षेत्र के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। फलतः भारतीय समाज में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विभेदीकरण संभव हुआ, वर्ग स्तरीकरण का विकास संभव हुआ, कई नवीन वर्गों तथा संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ, प्रवास के दर में वृद्धि हुई, समाज में अर्जित प्रस्थिति को महत्त्व प्राप्त हुआ, व्यक्तिवादिता का विकास हुआ जिसके कारण परंपरागत संरचनाओं में आधुनिकीकरण की दिशा में परिवर्तन प्रारंभ हो गया।
- आधुनिक पश्चिमी सभ्यता समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, व्यक्तिवादिता, विवेकशीलता, मानववाद के दृष्टिकोण पर आधारित थी। औपनिवेशिक शासनकाल में प्रारंभ की गई औपचारिक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने, जो धर्मनिरपेक्ष, तार्किक एवं वैज्ञानिक थी, न केवल योग्यता एवं प्रदत्त प्रस्थिति को महत्त्व प्रदान किया बल्कि स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को प्रसारित करके हमारे जीवन के सभी पक्षों को इस दिशा में प्रभावित किया और भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अग्रसारित किया फलतः भारतीय समाज में धर्म के प्रभाव में कमी आई सोपानिकता कमजोर हुई निम्न जातीय समूहों एवं स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार प्रारंभ हुआ तथा सामूहिकता की जगह व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति विकसित होने लगी जिसने नातेदारी व्यवस्था, परिवार, विवाह आदि में नवीन परिवर्तनों और प्रस्थिति उन्नयन हेतु विभिन्न व्यक्तियों व समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष का बीजारोपण किया।
- औपनिवेशिक शासनकाल में नवीन शिक्षा व्यवस्था की शुरूआत प्रारंभ में मुंबई, कलकत्ता एवं मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना के रूप में भारत के तीन क्षेत्रों में हुई जिसने मुख्यतः दो तरह के परिवर्तनों को संभव बनाया–
  1. इन शिक्षण संस्थानों में आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ जो विवेकशीलता के सिद्धांत पर बल देता था और जिसने भारतीय समाज में आधुनिकीकरण को नेतृत्व प्रदान किया।
  2. सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि का प्रारंभ हुआ। इसने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलाव एवं समन्वय की प्रक्रिया को क्रियाशील किया इससे परंपरागत कुरीतियों एवं मान्यताओं के उन्मूलन की दिशा में परिवर्तन संभव हो सका।
- अंग्रेजों द्वारा वयस्क मताधिकार, संगठित व प्रशिक्षित पृथक न्याय व्यवस्था, औपचारिक एवं लिखित कानून व्यवस्था, आधुनिक सैन्य संगठन, नौकरशाही व्यवस्था पर आधारित सिविल सेवा का अखिल भारतीय स्वरूप आदि की शुरूआत की गई और इस दिशा में बहुत सारे कानूनों का निर्माण किया गया जिससे राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की शुरूआत हुई। परिणामस्वरूप, शक्ति संरचना में शक्ति की प्राप्ति हेतु प्रतिस्पर्धा तेज हुई, शक्ति संरचना का परंपरागत एवं आनुवांशिक स्वरूप कमजोर हुआ और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हुई।
- यहाँ ध्यान देने योग्य प्रमुख बात यह है कि औपनिवेशिक काल में निश्चित रूप से भारत में आधुनिक संरचना और संस्कृति की पृष्ठभूमि तैयार हुई जो पूरे भारत वर्ष में प्रभावशाली रही। फिर भी, इस दौर में स्थानीय या लघु संरचनाएँ, जिनमें परिवार, जाति एवं ग्राम शामिल हैं, विशेष प्रभावित नहीं हुए। क्योंकि, अग्रेंजों की प्रारंभिक नीति इन क्षेत्रों में न्यूनतम हस्तक्षेप की बनी रही। भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के विकास की पूर्णतः अभिव्यक्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संभव हो सकी जब बृहद् संरचनाओं, लघु संरचनाओं एवं लघु तथा बृहद् परंपराओं के मध्य आधुनिकीकरण में असंगति को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया, जो अंग्रेजी शासनकाल के दौरान विद्यमान थी।

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के स्वरूप

- आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रति भारतीय समाज में तीन तरह की प्रतिक्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं–
  1. परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध
  2. आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन
  3. भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध

- प्रथम प्रकार की प्रतिक्रिया घोर परंपरावादी और कट्टरपंथियों की थी जो भारतीय परंपरा में निहित तत्त्वों एवं आदर्शों को श्रेष्ठ मानते थे और इससे अलग हर विदेशी तत्त्व एवं आदर्श को संदेह की दृष्टि से देखते थे और त्याज्य मानते थे। इनके अनुसार आज के युग की सभी उपलब्धियाँ परंपरागत भारत में (वैदिक काल या रामायण व महाभारत काल में) घटित हो चुकी थी। इसलिए ये पुनः अपनी परंपरा को स्थापित करना और अपने अतीत के गौरव को वापस लाना चाहते

थे। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया विरोध के रूप में प्रकट हुई और इन्होंने हर आधुनिक चीज को विदेशी कहकर उसका विरोध किया और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में परंपरा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया।

आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन

- आधुनिकीकरण के प्रति दूसरी प्रतिक्रिया उन लोगों की थी जिन्हें तत्कालीन समय में आधुनिकतावादी कहा जाता था। ये परंपरा में निहित सभी तत्त्वों व आदर्शों को पुरातनपंथी पोंगापंथी व अंधविश्वास कहकर उनका माजक उड़ाते थे व अंग्रेजों के साथ आए प्रत्येक विदेशी चीज को श्रेष्ठ मानते थे। इनके अनुसार भारतीय समाज का कल्याण इसी में है कि यह शीघ्रता से पश्चिमी समाज की भाँति हो जाए। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया परंपरा के सभी तत्त्वों का त्याग और आधुनिकता के सभी तत्त्वों एवं आदर्शों की पूर्ण स्वीकृति के रूप में हुई। इन लोगों ने आधुनिकता के मूल्य प्रतिमान, जीवनशैली तथा विश्वदृष्टि सभी को पूर्ण रूपेण स्वीकार किया व इसका समर्थन किया।

भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

- आधुनिकीकरण के प्रति तीसरी प्रतिक्रिया समन्वयवादियों की थी जो परंपरा और आधुनिकता के मध्य समन्वय के पक्षधर थे। इनका मानना था कि आधुनिकता के संदर्भ में परंपरा पर फिर से विचार करना चाहिए। परंपरा में जो तत्त्व एवं आदर्श रखने योग्य हैं उसे बनाए रखना चाहिए और जो वर्तमान समय में प्रासंगिक या उपयोगी नहीं हैं उनका त्याग करना चाहिए। इसी तरह, आधुनिकता के तत्त्वों एवं आदर्शों में से जो तत्त्व वर्तमान भारतीय समाज एवं संस्कृति के लिए प्रासंगिक, उपयोगी एवं विवेकपूर्ण हैं उसे स्वीकार करना चाहिए और जो नहीं हैं उसे छोड़ देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, परंपरा एवं आधुनिकता के समन्वय से ही भारतीय समाज का कल्याण एवं विकास संभव है इसलिए इस तीसरी विचारधारा के समर्थकों ने परंपरा के साथ आधुनिकता को संशोधित रूप में स्वीकार किया और भारत में भारतीय समाज व संस्कृति के साथ सामंजस्य बैठाते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को संशोधित रूप में अग्रसारित किया। उपरोक्त तीनों प्रतिक्रियाओं में से तीसरी प्रतिक्रिया सर्वाधिक तर्कसंगत एवं व्यवहारिक रूप से सफल रही है अर्थात् भारत में परंपरा का बिना विखंडन किए आधुनिकीकरण संभव है और दोनों में परस्पर विरोध ना होकर दोनों का सह अस्तित्व संभव दिखाई पड़ रहा है। संतान के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रयोग तथा जन्म के शुभ अवसर पर पारंपरिक कर्मकांड (छठी आदि), आधुनिक तकनीक से कृषि कार्य तथा मकर संक्रांति, पोंगल, लोहड़ी, वैशाखी का त्यौहार, परिवार नियोजन की स्वीकृति और संतान को ईश्वरीय इच्छा के रूप में मानना, औद्योगीकरण एवं यंत्रीकरण तथा विश्वकर्मा पूजा के अवसर पर यंत्रों की पूजा, जीवन के अनेक क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अनेक क्षेत्रों में अंधविश्वास को मान्यता (जैसे-बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, शुभ-अशुभ की मान्यता आदि) ऐसे उदाहरण हैं जो उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण और भारतीय परंपरा में एक अटूट क्रम विद्यमान रहा और कुछेक अंतर्विरोधों के बावजूद दोनों ने एक-दूसरे को संपोषित किया है। इस प्रक्रिया ने निश्चित रूप से भारतीय समाज को आधुनिक समाज की ओर अग्रसारित किया है। परन्तु यह परंपरा को पूर्णतः विस्थापित करके नहीं हुआ है, बल्कि परंपरा का आधुनिकीकरण हुआ है और भविष्य में अनुकूलनकारी परिवर्तन की इस प्रक्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी, कि आधुनिकीकरण एवं परंपरा के मध्य उत्पन्न तनाव का समाधान कैसे किया जाता है क्योंकि जहाँ समाधान सही नहीं रहा है, वहाँ आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने कई तरह के विखंडन को उत्पन्न दिया है। (जैसे-इंडोनेशिया, वर्मा, आदि देशों में) और जहाँ यह समाधान सही तरीके से हुआ है, वहाँ आधुनिकीकरण सफल रहा है। (जैसे-जापान में)

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समस्याएँ

- भारतीय समाज परंपरागत व्यवस्था से आधुनिकीकृत व्यवस्था की ओर बढ़ने से परंपरा एवं आधुनिकता की समांतर धाराएँ एक साथ दिखाई दे रही हैं जो एक दूसरे के विपरीत मूल्यों पर आधारित होने के कारण अनुकूलन की समस्या उत्पन्न कर रही हैं। परंपरा और आधुनिकता के इस संक्रमण काल से तमाम विरोधाभास एवं समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है:-

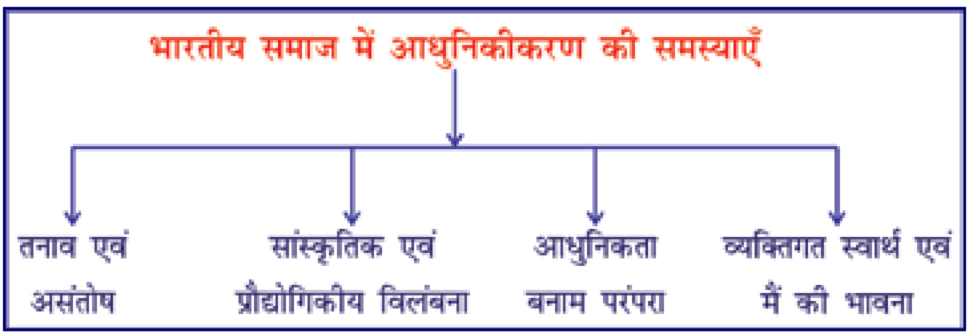

1. ***तनाव एवं असंतोषः-*** परंपरागत भारतीय समाज में शिक्षा की दर अत्यंत कम थी। विभिन्न सरकारी एवं गैरसरकारी उपायों के उपरांत यहाँ साक्षरता में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा में भी भारतीय समाज आगे बढ़ने लगा। किन्तु सभी शिक्षित लोगों को उनकी योग्यतानुसार रोजगार नहीं मिला। जिसके कारण उनमें तनाव, कुंठा एवं असंतोष उत्पन्न हुआ। ये बेरोजगार युवक आगे-चलकर गैर कानूनी गतिविधियों में भी शामिल होने लगे हैं।
2. ***सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकीय विलंबनाः-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में समान रूप में आरंभ नहीं हुई बल्कि समाज के कुछ तत्त्व इससे अछूते ही रहे। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण तथा अर्थव्यवस्था के विकास के साथ भारतीय समाज में वर्ग व्यवस्था के लक्षण आने लगे किन्तु जाति व्यवस्था फिर भी बनी हुई है। भारत में उत्पादन प्रणाली की उत्पादन शक्तियों का आधुनिकीकरण हुआ पर उत्पादन संबंध में बदलाव बहुत कम आया। भारत में शिक्षा में वृद्धि के उपरान्त राष्ट्रवादी भावना में वृद्धि हुई किन्तु साथ ही क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद अभी तक बना हुआ है। महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई है तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, किन्तु पितृसत्तात्मकता आज भी बनी हुई है।
3. ***आधुनिकता बनाम परंपराः-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ साथ परंपराए भी अपना स्थान बनाए हुए हैं। शहर और गाँव सभी समाजों में यह स्थिति बनी हुई है। लोग जब आधुनिक मूल्यों से खतरा महसूस करते हैं तो वे परंपरागत मूल्यों की ओर वापस लौटने लगते हैं। विभिन्न धर्मो के पुनरूत्थानवादी आंदोलनों में ऐसा स्पष्ट देखा जा सकता है।
4. ***व्यक्तिगत स्वार्थ एवं मैं की भावनाः-*** परंपरागत भारतीय समाज में समूह हित सर्वोपरि था तथा परिवार, समाज या समूह के प्रति हम की भावना होती थी किन्तु आधुनिकता के विकास के साथ व्यक्ति तार्किक होता जा रहा है उसमें भावनात्मक मूल्यों की कमी आ रही है जिसके कारण वह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ देख रहा है। उसके अन्दर मैं की भावना आ रही है और हम की भावना गायब होती जा रही हैं जिससे सामाजिक सौहार्द्र में कमी आ रही है। लोगों में द्वितीयक एवं संविदात्मक संबंध बनते जा रहे हैं और प्राथमिक एवं सहयोगात्मक संबंधों में कमी आ रही है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से समाज में सहयोगात्मक ही नहीं बल्कि असहयोगात्मक तत्त्वों की वृद्धि हो रही है। लोगों में भौतिकवादी मूल्यों के प्रति रूझान होने से तमाम समस्याएँ उत्पन्न हो रहीं हैं। व्यक्ति भौतिक विकास में असफल होने से असंतुष्ट होता जा रहा है और उसमें मानसिक तनाव भी उत्पन्न हो रहें हैं। कभी कभी आपराधिक गतिविधियाँ भी इसके कारण उत्पन्न हो रही हैं। किन्तु यह स्थितियाँ संक्रमण के दौर के कारण आई हैं और आशा है कि भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से निकलकर आधुनिकीकरण से लाभांवित हो सकेगा।

जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभाव

एक विशेष मुद्दे, विचार या सूचना आदि को अन्य लोगों तक संप्रेषित करना संचार कहलाता है। आधुनिक युग सूचना का युग है और इन सूचनाओं को एक साथ जनता के बहुत बड़े भाग तक संप्रेषित करना जनसंचार कहलाता है। जनसंचार के अंतर्गत आधुनिक संचार प्रणाली यथा रेडियो, टीवी, समाचारपत्र, इंटरनेट के माध्यम से किसी सूचना या विचार को द्रुत गति से जनता के पास तक पहुँचाया जाता है।

- विकास और परिवर्तन में सूचना एक महत्त्वपूर्ण कारक है और जनसंचार के साधनों द्वारा इन सूचनाओं का प्रसार सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाता है या इसके लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। मनोवृत्तियों व मूल्यों में बदलाव लाने हेतु यह न केवल नवीन अवसर व ज्ञान प्रदान करता है बल्कि लोगों के ज्ञान के सीमा के विस्तार में भी सहायता प्रदान करता है।
- वर्तमान भारत के जनसंचार माध्यमों की विषयवस्तु पर विचारोपरांत यह स्पष्ट होता है कि आज अधिकांश साधन भूमंडलीकरण तथा आधुनिकीकरण के मूल्यों के प्रसार में लगे हैं जिसके दो महत्त्वपूर्ण परिणाम रहे हैं-
  1. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिली है।
  2. पाश्चात्य सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रचार हुआ है।
- आधुनिकीकरण के तत्त्वों (जैसे स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता व लोकतांत्रिक मूल्यों) ने जहाँ भारतीय सामाजिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन को सक्रिय बनाया है वहीं पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकवादी-उपभोक्तावादी तत्त्वों ने ऐसी प्रवृत्ति (व्यक्तिवादी व महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्ति, धन से धन कमाने की प्रवृत्ति, भोगविलास की प्रवृत्ति, प्रतिस्पर्धा एवं असहिष्णुता, सांस्कृतिक विविधता का ह्रास आदि) को प्रसारित किया है जो भारतीय संस्कृति के तत्त्वों (सहिष्णुता, सामूहिकता, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक विविधता आदि) को कमजोर किया है। जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभावों को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-
  1. भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, एवं
  2. भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव।

भारतीय संस्कृति पर प्रभाव (Effect of Indian Culture)

- जनसंचार के साधनों ने भारतीय संस्कृति में आधुनिकता व पश्चिमी संस्कृति के तत्वों का तीव्र प्रसार किया है जिसको

निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. पाश्चात्य परिधानशैली का आगमन जहाँ पुरुषों व स्त्रियों के काम व आराम के अनुकूल है वहीं कम कपड़ों के कारण इसने स्त्रियों के प्रति व्यभिचारों को बढ़ाया है। आज व्यक्ति के लिए फैशन व सौंदर्य प्रसाधनों के प्रयोग को संचार साधनों के प्रभाव ने आवश्यक बना दिया है और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में स्थापित किया है।
2. आज जनसंचार माध्यमों ने लोक संस्कृति के लिए विशेष प्रश्न खड़े किए हैं। जनसंचार का इनके लिए संदर्भ बन जाने के कारण इनके मूल स्वरूपों का रूपांतरण संभव हुआ है जिससे स्वयं लोक संस्कृति के रचनाकारों की अपनी मौलिक रचनात्मक क्षमता प्रभावित हुई है। आज लोक रचनाओं के साथ लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी अप्रत्यक्ष भागीदारी में बदल गई है। लेकिन दूसरी ओर इसने लोक संस्कृति को भारतीय स्तर पर प्रसारित करने तथा इसकी विलुप्तता को पुनर्जीवित करने का काम भी किया है।
3. कला के व्यापारीकरण में जनसंचार के साधन बिचौलियों का काम कर रहे हैं साथ ही जनसंचार के साधनों व विशेष रूप से जनकलाकारों के बीच भी व्यापारिक मध्यस्थों की भूमिका बढ़ी है। कला के ऊपर कलाकार का हस्तक्षेप कम हुआ है और बाह्य तत्त्वों, नौकरशाही व व्यापारिक मध्यस्थों का हस्तक्षेप बढ़ा है। पाश्चात्य संगीत की ओर मध्यमवर्ग के झुकाव के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत उपेक्षित हुआ है। परंतु इसकी प्रतिक्रिया में शास्त्रीय संगीत की पुनर्स्थापना भी हो रही है।
4. संचार साधनों के प्रभाव से भारत में एक 'पॉप संस्कृति' का उद्भव हो रहा है जिसने भारतीय मानसिकता का शोषण किया है साथ ही भारतीय संस्कृति के मिश्रण ने एक नई विधा को भी उत्पन्न किया है जिसे जनमानस उपयोगी मानता है।
5. जनसंचार के साधनों द्वारा प्रदर्शित व प्रसारित सांस्कृतिक भूमंडलीकरण की विशेषताओं ने स्थानीय व लघु सांस्कृतिक पहचानों के लिए संकट खड़ा किया है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रुपांतरित कर दिया है फलस्वरूप एक तरफ जहाँ समाज में आर्थिक संवृद्धि आ रही है वहीं दूसरी तरफ सांस्कृतिक वस्तुएँ अर्थहीन हो रही हैं।
6. जनसंचार के साधन सजातीयता की अपेक्षा रखते हैं और संस्कृति का मूलतत्त्व विलक्षणता है। भारत में सांस्कृतिक बहुलवाद को विविधता कायम रखती है न कि सजातीयता। भूमंडलीकरण ने इस सांस्कृतिक विशिष्टताओं के मिश्रण का प्रयास किया है और बहुलता को नकारा है फलतः जहाँ सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा मिला है वहीं राष्ट्रों की सांस्कृतिक स्वायत्तता सकते में आ गयी है।

- स्पष्ट है कि जनसंचार माध्यमों का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव सकारात्मक कम और नकारात्मक ज्यादा है। सिनेमा और विभिन्न चैनलों ने आधुनिकता के सकारात्मक मूल्यों को कम और पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को अधिक प्रसारित किया है जिसे आज भारतीय संस्कृति के समक्ष सांस्कृतिक क्षरण की स्पष्ट समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव

- भारतीय समाज एक परंपरागत समाज रहा है जहाँ धर्म की प्रधानता एवं जाति आधारित बंद स्तरीकरण की व्यवस्था रही है। इस समाज में परिवर्तन की गति अत्यंत मंद रही है परंतु संचार साधनों के विकास ने भारतीय सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तनों को उत्पन्न किया है जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. जनसंचार माध्यमों से प्रसारित आधुनिकीकरण के मूल्यों ने जाति व्यवस्था पर प्रहार किया है, फलतः जातिगत ऊँच-नीच की भावना या अस्पृश्यता जैसे तत्त्वों का ह्रास हुआ है, इनसे संबंधित सोपान के तत्त्व कमजोर हुए हैं और जजमानी व्यवस्था का विघटन संभव हुआ है। परंतु, दूसरी ओर आरक्षण के क्रियान्वयन व पहचान के संकट ने लोगों में जातीय पहचान की आस्था को पुनर्जीवित किया है दलितों में चेतना का आविर्भाव हुआ है और वे इस आधार पर संगठित हुए हैं तथा उनकी क्षैतिजीय भागीदारी में वृद्धि हुई है और इसमें संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।
2. आज जनसंचार साधनों द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में प्रेम विवाह को तरजीह दी जा रही है जो युवाओं में तेजी से प्रचलित हुआ है। हालाँकि इससे दहेज जैसी कुरीतियाँ, विवाह में धार्मिक एवं जातिगत प्रतिबंध ढीले पड़े हैं और स्त्रियों को समानता का दर्जा मिला है, परंतु दूसरी तरफ समाज की पकड़ युवाओं पर ढीली हुई है और अतिस्वच्छंदतावादी मूल्यों को बढ़ावा मिला है।
3. आज पाश्चात्य संस्कृति के रीति-रिवाजों का प्रचलन हमारी विवाह संस्था को चुनौती दे रहे हैं। समलैंगिकता का प्रसार भी विवाह पर कुठाराघात है जिसने भारतीय युवा मानसिकता को न केवल इस ओर उन्मुख किया है बल्कि कोलकाता के एक स्वयंसेवी संगठन ने तो इसको मान्यता देने की माँग भी शुरू कर दी है।
4. सम्पत्ति के लिए संबंधों को हाशिए पर रखना, विवाहेत्तर प्रेमसंबंध, संयुक्त परिवार के समझौता व सहिष्णुता के पक्षों का ह्रास, सास-बहू आदि संबंधों में परंपरागत तत्त्वों का ह्रास आदि वर्तमान जनसंचार साधनों का मुख्य विषय

रहा है। इन मुद्दों से संबंधित कार्यक्रम जहाँ स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता की प्रवृत्ति तथा सदस्यों के मध्य समानता युक्त संबंधों को प्रचलित कर रहे हैं वहीं परंपरागत संस्थाओं को कमजोर कर तथा तलाक की प्रवृत्ति को बढ़ाकर सामाजिक अव्यवस्था को भी उत्पन्न कर रहे हैं।

5. जनसंचार ने एक तरफ जहाँ स्वतंत्रता व समानता के मूल्यों को प्रसारित करके महिलाओं की प्रस्थिति को ऊँचा उठाया है वहीं दूसरी तरफ उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों के प्रति परंपरागत आदरभाव को समाप्त किया है। साथ ही, अश्लील कार्यक्रमों को प्रस्तुत करके समाज के युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा है जिसकी परिणति बढ़ती यौन विकृति, छेड़छाड़, बलात्कार आदि घटनाओं के रूप में हुई है।

- इसके द्वारा जहाँ ग्रामीण समाज में धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को विस्तारित करके ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों से धर्म के प्रभावों को कमजोर किया गया है वहीं आस्था, जागरण आदि धार्मिक चैनलों द्वारा धार्मिक तत्त्वों की व्याख्या कर धर्म के प्रति आस्था को पुर्नजागरित किया जा रहा है। धर्म के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण, धर्म का बाजारीकरण, धार्मिक रूढ़िवाद भी इसके प्रभावों में प्रमुख हैं।
- आज जनसंचार के साधन विज्ञान व प्रौद्योगिकीय शिक्षा के प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक जीवन के विभिन्न मुद्दों पर जागरुकता को बढ़ाकर और गाँव के लोगों को समकालीन समाज के सभी मुद्दों से परिचित कराकर ग्रामीण विकास में इसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आज रामदेव जी द्वारा धर्म के तत्त्व योग को फैलाकर मानसिक व शारीरिक क्रांति को उत्पन्न किया जा रहा है जिसमें जनसंचार की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। यू.जी.सी के सभी शैक्षिक पाठ्यक्रमों के संदर्भ में तथा दूरस्थ-शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका महत्त्व उल्लेखनीय है।
- निष्कर्ष है कि जनसंचार के साधनों की भूमिका आधुनिकीकरण की दिशा में उन्मुख किसी भी समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है परंतु इसके द्वारा अपेक्षित परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति जनसंचार माध्यमों पर संतुलित नियंत्रण व इसके सकारात्मक प्रयोग द्वारा ही संभव है।

जनसंचार साधन-जनित परिवर्तन की चुनौतियाँ

- भारतीय समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन हेतु जनसंचार एक प्रमुख साधन रहा है जिसके द्वारा हमारे देश में एक पराई संस्कृति का प्रसार हुआ है जिसे तृतीय विश्व पर सांस्कृतिक हमले की संज्ञा दी जाती है। इन साधनों से संस्कृति का प्रसार इस तरह होता है कि लोग अपने सामुदायिक व सामाजिक हितों को अपनी निगाहों में उचित नहीं समझते और यह बौद्धिक व सांस्कृतिक प्रचार हमारे राष्ट्रीय संस्कृति को कई आधारों पर चुनौती दे रहा है।
- छद्म आधुनिकीकरण इसकी प्रथम चुनौती है। हमने आधुनिकता के आधार पर तार्किकता, परानुभूति, सामाजिक गतिशीलता और सक्रिय सहभागिता को पूरी तरह नहीं अपनाया है बल्कि हम उसके उपभोगवादी लक्षणों में ही उलझकर रह गए हैं। इससे व्यक्ति केन्द्रीयता बढ़ी है और सामाजिक सरोकारों का ह्रास हुआ है। व्यक्तिगत धरातल पर लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक प्रस्थिति व भूमिकाओं को डगमगा दिया है।
- दूसरी चुनौती धर्म के उपयोग की है जहाँ धर्म को अल्पकालिक राजनीतिक लाभ का साधन बनाकर विवेकहीन धर्मांतरण को प्रश्रय दिया जा रहा है। धर्म पर आधारित सिद्धांत विस्मृत हो रहे हैं और तांत्रिक व चमत्कारिक बाबा फल-फूल रहे हैं क्योंकि वे अच्छे दामों पर स्वार्थ सेवा में लगे हैं। हमारी संस्कृति अनुकरणकारी, भोगवादी एवं लिप्सावादी संस्कृति बन गई है।
- तीसरी चुनौती अविवेकी और निकट दृष्टि की राजनीति की है जहाँ सामूहिकता का क्षय तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रबलता राजनीति को एक साधन या व्यवसाय के रूप में प्रयुक्त करने को उन्मुख करती है।
- चौथी चुनौती स्थानीय या लघु सांस्कृतिक पहचानों के संकट की है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रूपांतरित किया है। सांस्कृतिक तत्त्वों के बाजारीकरण से लोगों में जहाँ आर्थिक समृद्धि आई है तो वहीं दूसरी तरफ इनकी परंपरागत महत्ता में कमी भी आई है। महत्त्वाकांक्षा में वृद्धि कर इसने भले ही सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया हो परंतु साथ ही गैर-संस्थागत साधनों द्वारा लोगों को अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने को भी प्रेरित किया है। जनसंचार के साधनों ने नवीन कौशल व तकनीक का प्रयोग कर समाज के आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया है। परंतु इस आर्थिक विकास के व्यूह जाल में व्यक्ति धन प्राप्ति की लिप्सा में इतना उलझ गया है कि उसमें सकारात्मक सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रति अरूचि उत्पन्न हो गई है। विज्ञापनों की भरमार ने अति-यथार्थता को प्रस्तुत कर वास्तविकता के प्रति समाज में भ्रम उत्पन्न किया है। इसने तुच्छ इच्छाओं की संतुष्टि को सामाजिक जीवन के केन्द्रीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत कर जनमानस को गंभीर मुद्दों से विमुख किया है।
- जनसंचारजनित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के संदर्भ में उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि इसने सम्प्रति भारतीय समाज के समक्ष कई चुनौतियों को प्रस्तुत किया है। वैसे तो परिवर्तन की प्रक्रिया में परिवर्तन की चुनौती या अन्तर्विरोध प्राय: अन्तर्निहित होते हैं परंतु भारतीय संदर्भ में ये चुनौतियाँ राष्ट्रीयता की भी हैं और वैश्वीकरण की प्रक्रिया का अंग भी। इस रूप में आज संचार साधन आधुनिकीकरण के साथ वैश्वीकरण की प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील हैं और

इसने जहाँ कुछ अन्तर्विरोधों के बावजूद आधुनिकीकरण के मूल्यों को प्रसारित कर आधुनिक समाज की रचना की ओर हमें अग्रसर किया है वहीं एक वैश्विक उपसंस्कृति का निर्माण करके प्रतीकात्मक आंतरीकरण से नई आत्मचेतना एवं समानता के आधारों को मजबूत भी किया है। निश्चित ही संचार साधनों के इस प्रभाव ने भारतीय समाज व संस्कृति पर कुछ नकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न किया है पर साथ-साथ इसने भारत तथा पाश्चात्य संस्कृति के बीच गहरे संपर्क को स्थापित करके विश्व संस्कृति या विश्व गाँव की अवधारणा को साकार बनाने का सार्थक प्रयास भी किया है। हालाँकि संभावना है कि आधुनिक समाज की रचना के साथ इससे किसी सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जन्म होगा पर संभावना यह भी है कि इससे सांस्कृतिक विनाश का खतरा भी उत्पन्न हो जाएगा।

कक्षा कार्यक्रम

- सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भारतीय समाज पर प्रभाव – कक्षा कार्यक्रम
- भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : महत्वपूर्ण तथ्य एवं आँकड़े– कक्षा कार्यक्रम
- क्रिप्टोकरेंसी का भारतीय समाज पर प्रभाव – कक्षा कार्यक्रम
- कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव – कक्षा कार्यक्रम
- कोविड-19 महामारी का भारतीय समाज पर प्रभाव – कक्षा कार्यक्रम

भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : संभावित प्रश्न

1. समकालीन भारतीय समाज के प्रमुख लक्षणों की चर्चा करें?
2. परंपरागत भारतीय समाज की उन विशेषताओं का उल्लेख करें, जिसने तमाम बाधाओं के बावजूद भारतीय समाज को निरंतरता प्रदान की है।
3. परंपरागत भारतीय समाज के आधारभूत लक्षणों की चर्चा करें तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन करें।
4. भारतीय समाज में निरंतरता एंव परिवर्तन के कारकों को स्पष्ट करें।
5. "भारतीय समाज में परंपरा एंव आधुनिकता का सह- अस्तित्व है", स्पष्ट करें।
6. भारतीय समाज पर जनसंचार साधनों के परस्पर विरोधी प्रभावों की समीक्षा करें।
7. आधुनिकीकरण से आप क्या समझते हैं। भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें?
8. "समकालीन भारतीय समाज की आधुनिकता छद्म आधुनिकता है।" स्पष्ट कीजिए।
9. "भारतीय समाज में आधुनिकता परंपरा को विस्थापित करके नहीं आया है, बल्कि परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
10. भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समकालीन चुनौतियों को दर्शाइए और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिए।

✪✪✪✪✪